

VOLUME - V, ISSUE - IV - OCTOBER - DECEMBER - 2016
AJANTA - ISSN 2277 - 5730 - IMPACT FACTOR - 4.205 (www.sjifactor.com)

ISSN 2277 - 5730

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY QUARTERLY
AND PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

AJANTA

VOLUME - V

ISSUE - IV

OCTOBER - DECEMBER - 2016

AURANGABAD

IMPACT FACTOR
2016
4.205
Global Impact Factor

+ EDITOR +

Assit. Prof. Vinay Shankarrao Hatole

M.Sc (Math's), M.B.A. (Mkt), M.B.A (H.R.),
M.Drama (Acting), M.Drama (Prod & Dir), M.Ed.

+ PUBLISHED BY +



Ajanta Prakashan
Aurangabad. (M.S.)



शिक्षा : अधिकार तथा कर्तव्य

प्रा. डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

आय.सी.एस. महाविद्यालय, खेड (रत्नागिरी) महाराष्ट्र.

शिक्षा का आरंभ

मानव की महानता उस के माता-पिता के संस्कार के उपर निर्भर रहती है। माँ की गोद में पलते हुए बच्चे के जीवन विकास का बीज बोया जाता है। माता-पिता को मनुष्य के जीवन का पहला गुरु माना जाता है। इस सद्गुरु के जीवन की भली-बुरी घटनाओं की बुनियाद तय हो जाती है। हर माता-पिता को अपना बच्चा महान बने ऐसा लगता है। जिस तरह कुमार कच्ची मिट्टी को आकार देते हुए सुंदर घड़े का निर्माण करता है उसी तरह माँ-पिता को अपने बच्चे के जीवन को सुंदर आकार देने के लिए अच्छे संस्कार से उसे भर देना चाहिए। बचपन से जिस वातावरण में बच्चा पलता है वहाँ से मिली हुई शिक्षा आजीवन उसके साथ रहती है इसलिये गुरुजी कहते हैं,

मानव जन्म लेने से पूर्व ही उसकी शिक्षा का आरंभ होता है। माँ के गर्म में जब से उस निर्माण हुआ तब से माता-पिता के अपने-अपने जीवन में किये हुए सभी विचार, भावनाएँ, कर्म इन सब से नवजात, शिशु के शिक्षा की किताबें निर्मित हो जाती हैं। इस संसार में सिर्फ माता-पिता ही पढ़ाती हैं लेकिन इस प्रकृति से हमें क्या सिखाना चाहिए वह माता-पिता ही बताते हैं।

यह संसार एक बड़ी पाठशाला है। बिना दिवारों की, बिना अध्यापक की तथा बिनामूल्य पढ़ानेवाला यह स्कूल है। इस संसार की पाठशाला में अनुभव यही सच्चा अध्यापक होता है। इसलिये हमारे संत कबीर कहते हैं—

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ

पंडित मया न कोय,

दाई अक्षर प्रेम का

पढ़ै सो पंडित होय

संसार में प्रेम का अनुभव यही सबसे उच्च शिक्षा मानी गयी है। मानव-मानव से प्रेम का व्यवहार करे और सबके विकास में सहायता पहुँचाना यही शिक्षा का सही अर्थ माना गया है। इसलिये संत कबीर जसा अनपढ़ आदमी महान ज्ञानी कहलाया।

यह संसार एक खुली हुई किताब की तरह है। उसमें तरह तरह चित्र मिलते हैं, आकर्षण होते हैं, उबड़-खाबड़ समतल भूभाग है, बहनेवाली नदियाँ हैं, गिरने के लिए खाईयाँ हैं इन सबसे बचकर आगे बढ़ना होगा। हर पल सावधान रहने के लिए इस संसार की खुली किताब पढ़ना सिखना चाहिए। हमें हरदम विश्व का यह विशाल ग्रंथ पढ़ना होगा। सिर्फ बातें न करके प्रत्यक्ष कृति को महत्व देना होगा। प्रत्यक्ष उदाहरण के माध्यम से जो शिक्षा मिलती है वह सैकड़ों व्याख्यान सुनकर या अनेक विशाल ग्रंथ पढ़ने से नहीं मिलती।

लेकिन आधुनिक काल में बच्चे माता-पिता के साथ अधिक देर तक रुकत ही नहीं हैं। नौकरी करनेवाले माता-पिता अक्सर घर के बाहर रहते हैं, दादी माँ-दादाजी गाँव में रहते हैं, नौकर के हाथ बच्चों के हृदय और मस्तिष्क पर कब्जा करने

लगे हैं। बाहर की दुनिया पढ़ने और जानने के लिए इन बच्चों के पास समय नहीं है। स्कूल में जानेवाले बच्चे पीठ पर लदे हुए बोझ से इतने परेशान हो गये हैं कि उन्हें जब खाली समय मिलता है तो टी.वी. को अपना लेते हैं। घर और बाहर की दुनिया के साथ वार्तालाप करना सिर्फ स्वार्थवश देखा जाता है। अपने मतलब को पूरा करने के लिए संबंधित मनुष्य के साथ गीठी बाते करना, झूठ बोलना, कुत्रिम हसँना, उसे वश में करना आदि बातें बच्चे बड़ों से सिखने लगे हैं। प्रतियोगिता की भावना ने दिल में द्वेष उत्पन्न करना आरंभ किया है। बच्चों की तुलना अन्य बच्चों से बार-बार करने के कारण उनके मन विकारों से ग्रस्त होने लगे हैं इन सबसे अगर हमें बचना है तो बच्चों के जन्म के पूर्व से ही अच्छे संस्कार और अच्छा वातावरण उन्हें देना होगा यही शिक्षा का आरंभ माना जाता है। यहाँ संत कबीर जी कहते हैं –

काम, क्रोध, मद, लोभ की
जब लग तब मैं खान।
कहाँ मूर्ख कहै पंडितां
दोनों एक समान ।

यह ज्ञानगम्य उपदेश आज की शिक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होगा।

स्वावलंबन: शिक्षा का मूलधारा

स्वावलंबन यही सच्चे स्वाभिमान का लक्षण है। स्वावलंबन, स्वाभिमान, स्वअध्ययन और स्वतंत्रता यही शिक्षा के अलंकार माने गये हैं। शिक्षा में श्रम के गले में ही लक्ष्मीजी माला पहनाती है। श्रम के कारण ही मनुष्य महान बनता है। अमेरीका के अध्यापक हूवरजी का लड़का मजदूरी करते वक़्त उँची इमारत से नीचे गिरकर मर जाता है तब अध्यापक हूवरजी कहते हैं, राष्ट्र को स्वावलंबन और श्रम का महत्व समझाकर मेरे बेटे ने अपना जन्म कृतार्थ किया।

इस वाक्य से स्वावलंबन का शिक्षा में कितना बड़ा महत्व है यह स्पष्ट हो जाता है। श्रम के बिना कोई भी चीज़ लेना या देना बड़ा गुनाह है। श्रम से ही आत्मा का उद्धार माना गया है। मुफ्त में लेना और मुफ्त में देना पतन का लक्षण है। यह शिक्षा घर में ही ही बच्चों को प्राप्त होनी चाहिए।

आधुनिक काल का शिक्षा बच्चों को श्रम से बहुत दूर ले जा रही है। उन्हें खुद का काम करने में भी शर्म आने लगी है। माता-पिता अपने बच्चों का इतना खयाल करते हैं कि बच्चे पाँच-छः बरस के होने तक भी हाथ से खाना नहीं खा सकते। अपने लिए पानी का गिलास तक नहीं भर सकते। किताबों की पढ़ाई, स्कूल, ट्यूशन इन सबसे उन्हें फुर्सत ही नहीं मिल रही है तो स्वावलंबन तो दूर की बात बन गयी है। माँ बच्चों की सेवा में दिन-रात लगी रहती है। पिता कठोर मेहनत करके बच्चों को कोई काम करने की जरूरत नहीं है। वह सिर्फ पढ़ाई करे और अब्बल आकर परिवार का नाम रोशन करे इतनी सी उम्मीद उनसे रखते हैं। घर का कामकाज बाहर का काम, व्यवहार इन सबसे यह बच्चे हमेशा दूर रहते हैं।

श्रम के महत्व को बढ़ाने के लिए 'श्रम करो और पढ़ो' इस योजना को नये सिरे से सभी स्कूलों में शुरू करने की जरूरत है। सरकार भी बच्चों को स्कूल में भर्ती होने के लिए मुफ्त का खाना, मुफ्त की किताबें और मुफ्त की शिक्षा प्रदान करके श्रम का मूल्य नष्ट कर रही है। बच्चों के शक्ति का उपयोग करके देश विकास की ओर ले लिया जा सकता है। काम करने की लगन बचपन से बच्चों में आ जाएँ तो वह आगे चलकर काम से पीछे नहीं हटेंगे और आलस्य को नहीं अपनावेंगे। बच्चों की शक्ति का उपयोग करके देश विकास की ओर ले लिया जा सकता है। काम करने की लगन बचपन से बच्चों में आ जाएँ तो वह आगे चलकर काम से पीछे नहीं हटेंगे और आलस्य को नहीं अपनावेंगे। बच्चों को जिस कार्य में रुचि है उसे पहचानकर उसी कार्य को शिक्षा द्वारा बढ़ावा देकर उसीमें उच्च शिक्षा हासिल करने इजाजत मिल जाएँ तो बच्चे दिल लगाकर उस कार्य की पढ़ाई

कर सकते हैं और अपना दिमाग लगाकर उस में नयी योजनाएँ, नये शोध का निर्माण कर सकते हैं। बड़े या छोटे घर के बच्चे हो सबके लिए समान कार्य देने की सुविधा होनी। इस के लिए प्राचीनकाल की तरह गुरुकुल पद्धति को अपनाने की महत्ता आज दिखाई दे रही है।

सदाचार शिक्षा का अलंकार

शिक्षा द्वारा बच्चों के मन में सौंदर्य सद्गुण और पवित्रता इनके बारे में प्रेम उत्पन्न होना चाहिए। सच्चा सौंदर्य अच्छे में दिखाई देता है। सद्गुणी, सदाचारी सत्वशिल, संयमी आत्मीयता से भरे बच्चों का निर्माण यही शिक्षा का मुख्य उद्देश माना गया है। साकार रूप को सदाचार का आकार देना, विज्ञान को विवेक की तरफ ले जाना, प्रकृति से संस्कृति की तरफ ले जानेवाला मुक्त जीवन से जीवन मुक्त तक ले जानेवाला शिक्षा का महत्वपूर्ण भाव होना चाहिए।

आधुनिक काल की शिक्षा में प्रतियोगिता की भावना ने बच्चों के मन में विकार उत्पन्न करना आरंभ कर दिया है। शिक्षा नौकरी का साधन बनने लगी है, धनप्राप्ति का साधन मानकर शिक्षा को जबरदस्ती ग्रहण किया जाने लगा है। दहशत, घौंस, मारपीट, क्रोध आदि के माध्यम से बच्चों को डरा धमकाकर पढ़ाई करने की सख्ती की जा रही है। मन के विरोध में जाकर बच्चें माता-पिता के स्वार्थवश दिन-रात एक करके पढ़ाई कर रहे हैं। कुछ कारणवश बच्चे असफल हो जाते हैं तो सारा परिवार और वह बच्चा भी परेशान रहता है। उस वक्त परीक्षा के अवसर नकल करने के विचार, डमी बिठाना, लालच देकर अंक बढ़ाना ऐसी बातें मन में पलने लगती हैं और उसी के मुताबिक काम करने में परिवारवाले भी साथ देते हैं। ऐसे अवसर पर सद्गुणों का शिक्षारूपी अलंकार धुँधला सा दिखाई देता है।

सद्गुणों को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा में प्रतियोगिता को रखना नहीं है जिससे बच्चे विकारों से दूर रहेंगे। पर्व में मिले गुण हैं, कलाकारी है, विविधता है इसकी जाँच पड़ताल होना बहुत जरूरी है। विशिष्ट गुण या कला को पहचानकर उसे वही शिक्षा प्राप्त हो जाएँ तो वह दिल लगाकर काम की पढ़ाई कर सकता है। जिससे जो लाभ होगा वह उच्च शिक्षा से भी नहीं हो सकता। आज की शिक्षा पद्धति सबसे महत्वपूर्ण मानी गयी है। शिक्षा को व्यवसाय का दर्जा न देकर उसे दिल के द्वारा निकलनवाले भावों की उपज मानना होगा। जीवन समृद्ध बनाने के लिए शिक्षा की बेहद जरूरत होती है लेकिन शिक्षा के द्वारा सदाचार की भावनाएँ पलनी चाहिए जिससे मनुष्य हृदय प्रेम से भरा रहे और प्रेम के माध्यम से विश्व में एकता लाने का प्रयास वह आसानी से कर सकता है। सदाचार, शिक्षा का अलंकार है। जिससे मनुष्य का हृदय सौंदर्यशाली बन जाता है। जिसका मन सौंदर्य से भरा है वह जीवनभर अच्छा कार्य करता रहेगा।

शिक्षा: सेवा का महाकाव्य

शिक्षा का मतलब जीवन और जीवन का अर्थ शिक्षा हो जाता है। शिक्षा के बिना जीवन और जीवन के बिना शिक्षा हो ही नहीं सकती। जीवन में ताजगी, प्रसन्नता और मधुरता आने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण होती है। जीवन को उदार तथा विशाल करनेवाला और उपयोग में आनेवाला हर पल शिक्षा का ही होता है। शिक्षा के माध्यम से हृदय का विकास, हृदय में भक्ति, पवित्रता, नम्रता और करुणा निर्माण होनी चाहिए। शिक्षा के माध्यम से संकुचित विचारों को हटाकर, जीवन में जो कुछ अच्छी भावनाएँ हैं उसें अपनाना चाहिए। अपना जीवन व्यापकता के साथ जोड़ने का मतलब शिक्षा ग्रहण करना है। शिक्षा में सेवाभाव को अत्यधिक महत्व देना चाहिए। अपने हाथ की पाँचों उँगलियाँ, हृदय, मस्तिष्क संतुलित होकर उदारता और विशालता का भाव अपनाएँ तो सच्चे अर्थ में शिक्षा की प्राप्ति होगी। सेवाधर्म व्यापक अर्थ में ईश्वर की पूजा मानी गयी है। शिक्षा के माध्यम से मानव के मन में मानवता का भाव बढ़ना चाहिए। मानवतावादी धर्म से ही समाज की उन्नति हो सकती है इस विचार को अपनाना सही शिक्षा है।

आधुनिक काल की शिक्षापद्धति बच्चों के मन में आनंदभाव प्रकट करने के बजाय विकार भर देती है। आपसी होठ के कारण मत्सर भाव पैदा कर देती है। जो बच्चे शिक्षा ग्रहण करने में असफल हो जाते हैं वह अध्यापक उन्हें अंक कम देते हैं उनके बारे में कारण अध्यापकों को धामकियों देना, दबाव लाना, लालच देना, रिश्वत देकर खरीदना आदि बातों को बढ़ावा मिल जाता है। इन सभी बातों पर रोक लगाने के लिए प्रतियोगिता की भावना को हटाकर शिक्षा समाज भाव से अपनानेवाली होनी चाहिए। शिक्षा के माध्यम से महान ज्ञानी होने के बजाय सीधा-साधा भाव आचरण करनेवाला संत होना अच्छा माना गया है। आचार के आधार पर किया गया विचार महान माना जाता है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य का जीवन संपन्न और समृद्ध होना जरूरी है। उनके मन में मानवता का विशाल दृष्टीकोण निर्माण होना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से जबरदस्ती की जाएँ तो बच्चों का मन विकृत बन सकता है। स्कूलों में मिलनेवाली जानकारी यह जीवन का साधन होता है। विद्यार्थियों के जीवन में अच्छा परिवर्तन होना यही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना गया है। महात्मा गांधीजी ने कहा था कि, शिक्षा के माध्यम से शीलसंवर्धन होना चाहिए रवींद्रनाथ टैगोरजी मानते थे की प्रकृति के गोद में जाकर शिक्षा ग्रहण करनी होगी। शिक्षा न होकर सौंदर्य, शील तथा शक्ति का समन्वय माने शिक्षा मानी गयी है।

रवींद्रनाथजी गहते थे -

“यत्र विश्वं भवति एकनीडम्”

यह उनके विश्वभारती का सूत्र था। प्रेम, सामंजस्य, सहानुभूति और सहकार्य इस सूत्रद्वारा उन्हें एक मनुष्य एक विश्व का निर्माण करना था। संपूर्ण मानवजाति में एकता का भाव पैदा करनेवाली शिक्षा वह महत्वपूर्ण मानते थे। सामाजिक न्याय, सामाजिक समता और सामाजिक भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय एकात्मता की भावना प्रेरित करनी होगी। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के पास लीनता का गुण आना चाहिए। लीनता के बिना ज्ञान नहीं मिलता। ज्ञान के बिना श्रद्धा नहीं होगी, श्रद्धा के बिना भक्ति नहीं और भक्ति के बिना प्रेम निर्माण नहीं होगा।

शिक्षा का अर्थ तेजोमय जीवन

शिक्षा मनुष्य के जीवन को विकसित करती है, उन्नत और सतेज कर देती है। जीवन को तेजोमय बनाकर समाजसेवा के लायक बनाना शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जो शिक्षा हमें डरपोक बनाती है, दुर्बल बनाती है, निरुपयोगी, निष्क्रिय बनाती है उस शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन शिक्षाग्रहण करनेवाले बच्चे मजदूरी का काम करना शर्म की बात मानते हैं। इतिहास के पढ़ाई में इतिहास का गौरव पठन करनेवाले बच्चे इतिहास को दोहराने की आकांक्षा नहीं रखते। बच्चों का अधिक समय स्कूल में जाने के कारण वह घर के कामकाज में हाथ नहीं बँटाते, खेती में नहीं जाते, या घर का छोटा मोटा काम नहीं करते। काम करने की आदत उन्हें लगती ही नहीं है। लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करने में इतनी व्यस्त हो गयी हैं कि भोजन पकाना वह हीन काम समझने लगी हैं। आगे चलकर इनका सारा परिवार होटल का खाना कब तक खायेगा? यह समस्याएँ विकराल रूप लेकर सामने आ रही हैं। शिक्षा के कारण खेलकूद, कामकाज ये सभी बातें समाप्त हो गयी हैं। जिसके कारण बच्चों का शरीर तंदुरुस्त रहना मुश्किल हो रहा है। चटपटा खाना खाकर उनका शरीर दुर्बल हो गया है, पीठ बोज़ के कारण झुक गयी है। बच्चे बिमारी का शिकार हो रहे हैं क्योंकि वह निर्माण और सुरक्षा कैसे कर सकते हैं? इसलिए राष्ट्र को सतेज, सुजान, सदृढ़, सुंदर, सदाचारी तथा सरस बनानेवाली शिक्षा मिलनी चाहिए। राष्ट्र शक्तिशाली बनाना शिक्षा का कार्य है। उसके लिए शिक्षा की सख्ती या मुफ्त में शिक्षा देकर कुछ नहीं होगा। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य सशक्त, समर्थ तथा सुसंस्कृत बनना बहुत जरूरी है। इन बातों की तरफ अच्छी तरह से ध्यान देना होगा।

ISSN 2231-2137

CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA

A Peer-Reviewed Multi-Disciplinary International Journal

Volume : 6 Issue : 2 June, 2016

Deepak Nanaware
Editor-in-Chief

www.contemporaryresearchindia.net

Impact Factor : 0.956 (GIF)



संत कवि रैदास के काव्य की प्रासंगिकता

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे, हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र

Abstract: संत कवि रैदास और उनके काव्य की विचारधारा तत्कालीन संदर्भों में एक कलात्मक चमत्कार है। उसका महत्व आज भी उतना ही है, जितना सदियों पहले था। परिस्थितियों बाहरी रूप में कितनी भी बदली हो मगर अंतर्गमन बदला नहीं है। उनका काव्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उतना ही श्रेष्ठ है, जितना राष्ट्रीय स्तर पर है। संत कवि रैदास एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी वाणी के द्वारा मनुष्य मनुष्य के बीच जो जातीय भेद था उसे मिटाकर मानव को मानव के रूप में देखने का प्रयास किया। इसलिए रैदास के काव्य की प्रासंगिकता और महत्व अक्षुण्ण है।

Object:

1. रैदास अपने समय के प्रतिष्ठित संत, विचारक और कवि थे उनका परिचय सामान्य वर्ग तक पहुँचाने का प्रयत्न करना।
2. उनका समय धार्मिक विकृतियों का काल था ऐसे समय पर उन्होंने आचरण की शुद्धता और चिंतन की मौलिकता के कारण तत्कालीन समाज में अपना उच्चतम स्थान किस तरह बनाया उसे प्रस्तुत करना है।
3. धर्म के शाश्वत स्वरूप को रैदास जी ने ग्रहण किया जिसके अंतर्गत मानवता के सभी अच्छे गुण आते हैं, जिनके होने से व्यक्ति सदाचारी बनता है और नैतिक आचरण करता है। जिसकी हर मानव को आज जरूरत है।
4. रैदास का समस्त धार्मिक चिंतन मनुष्य को सदाचार की प्रेरणा देता है, जिस पर चलकर आज का मानव भी सहज साधना के द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

प्रस्तावना –

संत रैदास का जीवन और काव्य उदात्त मानवता के लिए आवश्यक सदाचारों के शाश्वत सैद्धांतिक मूल्यों का अक्षय भंडार है। जिसमें से प्रत्येक वर्ग और स्थिति तथा मानसिक स्तर पर व्यक्ति अपने लिए सुंदर सुंदर मोतियों का चुनाव कर सकता है। उन्होंने हिंदू-मुसलमानों में भावात्मक एकता स्थापित करने के प्रयास किये। छुआछूत तथा वर्णव्यवस्था का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ्य के लिए प्रयास किये। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण के खिलाफ आवाज उठायी थी। उन्होंने ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें यह सब विशेषताएँ न हो। हर व्यक्ति श्रम करके और सब मानव मिलकर भारत की इस पवित्र भूमि पर रहे तथा उनके सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करें। इन संपूर्ण तथ्यों पर गंभीरता से विचार करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि,

संत रैदास के काव्य का वैचारिक आधार बहुत ही विस्तृत तथा उदार है। जिसकी प्रासंगिकता अक्षुण्ण है।

रैदास जी का व्यक्तित्व –

रैदासजी ने अपने व्यक्तित्व से यह प्रमाणित कर दिया है कि महानता किसी जाति अथवा राष्ट्र की संपत्ति न होकर व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान होता है। इसीलिए रैदास चमार जाति में उत्पन्न होकर भी संपूर्ण मानवता की विभूति हैं। डॉ. मनमोहन सिंह जी ने लिखा है कि, 'रैदास के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है कि एक ओर तो उनको निम्न जाति से संबंधित होने का अहसास है तथा दूसरी ओर समाज की कथित उच्च श्रेणियों से संबंध रखनेवाले लोगों की तुलना में उच्च स्तरीय जीवन जीने का गर्व है। गर्व की भावना उसी व्यक्ति में हो सकती है, जिसने अपने जीवन में किसी प्रकार की साधना के बल कुछ प्राप्त किया हो।' ¹ रैदास की वाणी का अध्ययन करने के बाद पता चलता है कि रैदास ने कही पर भी अपनी जाति को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया। उस समय जो भारतीय समाज एक उच्च समाज द्वारा नीच, शूद्र, अस्पृश्य जैसे शब्द सुनते सुनते आत्महीनता का शिकार हो गये थे। रैदास जी के इस उद्घोष से सदियों से दलित उस मानव समुह में आत्मगौरव का भाव जागृत हुआ। इससे स्पष्ट है कि रैदास के व्यक्तित्व में बड़े मानव समुह को आकर्षित करने की क्षमता थी। इसका यह परिणाम निकला कि जब तलवार की नौक पर अनेक हिंदू जातियाँ कहीं धन प्राप्ति के लिए या किसी पद प्राप्ति के लिए अपना धर्म परिवर्तन कर, इस्लाम धर्म ग्रहण कर रहीं थी, तब रैदास की जाति के किसी चमार ने धर्म परिवर्तन नहीं किया। इस ओर संकेत करते हुए 'प्रभाकर' जी ने लिखा है कि, 'संत कवि रैदास एक ऐसी क्रांतिकारी विभूति हैं, जिन्होंने अपने जीवन की शांत ज्वाला से पशुता में घिरे उन मानवों को आत्महीनता से बचाया और धर्म की मूल भावनाओं से सदियों तक सम्पृक्त

रखा. इस आश्चर्यजनक सत्य पर हमारा ध्यान जाना चाहिए कि इस्लामी राज्य की उन सदियों में जब मुसलमान राजपूत, मुसलमान गूजर, मुसलमान जाट, मुसलमान जुलाहा, मुसलमान तेली, मुसलमान नाई जैसे धर्म परिवर्तित जातियों का जन्म हुआ, पर मुसलमान चमार ने जन्म नहीं लिया. कितना महान था उस मोची रैदास का व्यक्तित्व."2 कहते हैं कि उपदेश वही पगभावी होता है जो वाणी से नहीं आचरण से दिया जाता है. वे सीधा साधा आचरण करते हैं. हाथ का कमाया खोना, थोड़े में सुतुष्ट रहना, सुख दुःख में मनःस्थिति को समान रखना आदि उनके स्वभाव में सम्मिलित थे. सत्य, अहिंसा, दया, भक्ति, और सेवा उनके स्वभाव में सम्मिलित थी. रैदास जी ने श्रम को ईश्वर माना है और कहा है कि व्यक्ति को नेक कमाई करके खाना चाहिए. संत रैदास की सामाजिक चेतना -

हिंदी साहित्य के मध्यकाल में भारत का सामाजिक ढाँचा पूर्ण अस्त-व्यस्त हो गया था. कुल मिलाकर यह धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक पतन का काल था. लेकिन जब जब भी भारत भूमी पर विनाशकारी शक्तियों का प्रभाव है, तब तब ही किसी न किसी महापुरुष का जनम हुआ है. ऐसे ही समय में दीन हीन भारत की दुःखी जनता को सामाजिक स्वास्थ्य के लिए, समता का संजीवन पिलाने के लिए, भारत भूमि पर संत रैदास का आविर्भाव हुआ था. वे अपनी वाणी में कहते हैं-

"मेरी जाति कुटवांढला ढोर दुवन्ता।

नित ही बनारसी आसपास।।" 3

रैदास की वाणी में इनके जन्मस्थान का बनारस के आसपास होने का उल्लेख मिलता है. उनके इस पद से उनकी जाति का भी पता चलता है, वैसे संत रैदास ने कही पर भी अपनी जाति को छिपाने का प्रयास नहीं किया है. संत रैदास की माँ का नाम करमाबाई तथा पिता का नाम राघवदास था, जो चमड़े से जूते बनाने का काम करते थे. संत रैदास भी जीवनभर अपना पैतृक पेशा ही करते थे. साथ-साथ प्रभु भक्ति और हरि कीर्तन करते थे. साधु-संगति और भक्ति ही उनके लिए सब कुछ थी. वे किसी साधु को नंगे पाँव देख लेते थे तो अपनी दिन भर की मेहनत से बनाया हुआ जूता उठाकर सादर उसे देते थे. तंग आकर उनके पिता ने उन्हें घर से अलग कर दिया. ये घर के पीछे झोपड़ी डालकर अपनी साध्वी पत्नी 'लोना' के साथ रहने लगे तथा पुराने जूते गोंटकर अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगे. साधु संगति और प्रभु भक्ति के प्रति इनका अनुराग फिर भी कम नहीं हुआ. संत रैदास का अधिकतम समय काशी में ही व्यतीत हुआ. किंतु फिर भी वे देश भर भ्रमण करते रहे. जीवन के अंतिम समय में उनका शरीर वृद्धावस्था के कारण इतना

जर्जर हो चुका था कि वे प्रभु की पूजा और किर्तन करने में भी असमर्थ हो गये थे.

उस समय मध्यकालीन भारत अंधविश्वासों के घनघोर अंधेरे में साँस ले रहा था., कुछ बेबूनियाद रुढ़ियों ने उसमें और सडन पैदा की थी. रैदास की वाणी इसका घोर विरोध कर रही थी. लेकिन सवर्ण लोग उनका उपहास कर रहे थे. ऐसे समय पर सजग साहित्यकार का जो दायित्व होता है. उसका संत रैदास ने बड़ी सहजता से निर्वह किया है. सर्वप्रथम हिंदू मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया. यह तभी संभव था जब राम और रहीम को एक समझा जाये तथा वेद और कुराण को लोग बराबर सम्मान दें. मंदिर और मस्जिद के झगड़े आज की तरह तब भी सांप्रदायिकता स्तर पर हिंदू और मुसलमानों को दूर कर रहे थे. किंतु रैदास ने तब भी इन दोनों को एक ही परम पिता परमात्मा का धर्म स्थल बताकर हिंदू और मुसलमानों को आपस में न लड़ने की सलाह दी. उनका मत था-

"मंदिर मस्जिद एक है, इन में अनंतर नाहिं।

रैदास रान रहमान का, झगडनु कोउ नाहिं।।

रैदास हमारा राम जोई, सोई है रहमान।

काबा कासी जानि यहि, दोउ एक समान।।" 4

इसका अर्थ यह है कि, प्रत्येक व्यक्ति जन्मतः एक समान है. सबमें एक ही रंग का रक्त, एक प्रकार का मांस और असिधियाँ हैं. फिर भी इस संसार में आकर व्यक्ति, धर्म, जाति, वर्ण आदि के नाम पर क्यों बँटें? संत रैदास ने इस बुनियादी तथ्य को सबके सामने रखा. इस प्रकार संत रैदास जी ने तत्कालीन परिस्थितियों में समाज को उचित दिशा देने के लिए धार्मिक अंधविश्वासों का भण्डाभोज करके समस्त मनुष्यों को भेदभाव भूलकर आपस में मिलजुलकर इस देश की उन्नति के लिए कार्य करने का उपदेश दिया. उनका यह उपदेश तत्कालीन परिस्थितियों में जितना आवश्यक था, सामयिक संदर्भों में भी इतना ही प्रासंगिक है क्योंकि भौतिक दृष्टि से इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर लेने के बावजूद धार्मिक अंधविश्वास पूर्णतः नष्ट नहीं हो पाये हैं. आज भी मंदिर और मस्जिद को लेकर राम और खुदा के नाम पर सांप्रदायिक दंगे निरंतर हो रहे हैं. ऐसे स्थिति में संत रैदास के काव्य में सबक लेना आवश्यक है.

उस काल के समस्त रुढ़ियों पर संत रैदास जी ने डटकर प्रहार किया है. वर्ण व्यवस्था को हिंदू धर्म का कोढ़ माना जाता है. वर्ण व्यवस्था का अभिशाप चतुर्थ वर्ण अर्थात् शूद्र को सहना पड़ा. रैदास इसी वर्ण से संबधित थे. इसी कारण उन्हें उच्च वर्ण का उपहास सहना पड़ा ही, कभी कभी प्रतिशोध का शिकार भी होना पड़ा था. इसलिए उन्होंने सबसे पहले इन मान्यताओं का विरोध किया-

‘रैदास एक ही बूँद सौं, सब ही भयों विचार।

मूरिख है जो करत है वरन अवरन विचार।।

रैदास’ एक ही नूर ते, जिमि उपज्यो संसार।

उँच-नीच किहि विध भये, ब्राम्हान और चमार।।’5

इसके बाद उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि कोई व्यक्ति जनमें कारण उँच-नीच नहीं हो सकता, क्योंकि मन के अनुसार जन्म लेना किसी के हाथ में नहीं होता। लेकिन वह अपने कर्म के आधारपर श्रेष्ठत्व धारण कर सकता है। समस्त मिथ्याचारों तथा आडंबरों का संत रैदास ने डटकर विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि ‘मन चंगा तो कठौती में गंगा’ वस्तुतः मन का शुद्धता सर्वोपरि है। उन्होंने समस्त बुराईयों पर एक-एक कर सशक्त चोट की है। एक समाज सुधारक के नाते उन्होंने समाज की सहि नब्ज पकड़ ली। उस काल के राजा दिन रात शराब में डूबे रहते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि, ‘यथा राजा तथा प्रजा’ इस उक्ती के अनुसार सभी लोगों के बीच भी यह शराब की बीमारी फैलती गयी जो इनके पतन का मुख्य कारण सिद्ध हुआ। संत रैदास जी ने इसका विरोध करते हुए कहा है कि,

रैदास मदुरा का पीजिए, जो चढ़ै-चढ़ै उतराव।

नाव पहारस पीजियै, जो चढ़ै नाहिं उतराव।।” 6

इसी प्रकार मांसाहार भी इन व्यसनों में से एक था। यह पापाचार एवं आत्मिक अशुद्धता का मूल कारण है। संत रैदास ने इसके मूल जीव हत्या पर चोट की तथा जीव हत्या को पाप बताकर ‘अहिंसा के सिद्धांत का प्रचार किया-

“दया भाव हिरदै नहीं, भखहिं पराया मास।।

ते नर नरक में जाइहिं, सत भाषै रैदास।। 7

उन्होंने मुसलमानों द्वारा जीव हत्या कर नमाज पढ़ने की मनोवृत्ति को दूषित करार दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी जीव को मारकर कभी भी खुदा की प्राप्ति हो नहीं सकती, जिस गाय और बकरी को खुदा ने पोषण के लिए

बनाया है। भला उसे मारकर ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

निष्कर्ष -

संत रैदास ने समस्त मानव जाति को अपने हृदय में दया भाव को स्थान देने का उपदेश दिया। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति अपनी समस्त इंद्रियों को वश में करना है। इन्द्रिय निग्रह आनंद का आधार है। इच्छाओं को योग से दूर रखने पर ही व्यक्ति का मन शांत रहता है, मन की शांति ही संतोष का कारण है, और संतोष व्यक्ति का सबसे बड़ा धन है। धन संचय करने से सुख नहीं मिलता। सत् संगति का जीवन में बड़ा महत्व है। संत रैदास संतोष और सदाचार को ही जीवन का आधार मानते हैं। जो मनुष्य कभी सत्य नहीं बोलता, विश्वासघात करता है ऐसे व्यक्ति से कभी बात न करने की सलाह संत रैदास देते हैं। कोई उँचे कुल में पैदा होकर महान हो जाय, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किंतु कोई साधारण आय वर्ग के लोग तथा सामाजिक दृष्टी से हेय समझे जानेवाले कुल में उत्पन्न होकर महान हो जाय यह अपने आप में आश्चर्य की बात है। संत रैदास इन्हीं में से एक हैं। उनकी इन महानता का एकमात्र रहस्य है और वह है उनकी ‘श्रम के प्रति आस्था’ निष्क्रियता व्यक्ति को हर स्तर पर तोड़ देती है। इसलिए संत रैदास व्यक्ति को सदैव कर्मशील रहने का उपदेश देते हैं। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें कोई विषमता न हो। प्रत्येक व्यक्ति श्रम करके जीविकोपार्जन करें तथा लोगों के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करें। इस संपूर्ण तथ्यों पर गंभीरता से विचार करने के उपरांत हम कह सकते हैं कि संत रैदास के काव्य का वैचारिक आधार बहुत दृढ़ तथा उसकी भावात्मक पृष्ठभूमी बहुत ही विस्तृत तथा सामाजिक महत्व है जिसकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. संत कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ. एन्. सिंह-पृष्ठ 28-29
2. वही पृष्ठ-34
3. संत गुरु रविदास वाणी पदसंख्या-119, पृष्ठ-118
4. संत कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ. एन्. सिंह-पद संख्या-15 पृष्ठ-44
5. श्री. गुरु रविदास चरितम्- सं. डॉ. बी. पी. शर्मा, पृष्ठ-51
6. संत कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ. एन्. सिंह- पृष्ठ संख्या-51
7. वही पदसंख्या-224, पृष्ठ-30

VOLUME - V, ISSUE - II - FEBRUARY - JULY - 2017
GENIUS - ISSN 2279 - 0489 - IMPACT FACTOR - 4.954 (www.sjifactor.com)^I

ISSN 2279 - 0489
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY HALF YEARLY
AND PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

GENIUS

VOLUME - V ISSUE - II FEBRUARY-JULY - 2017 AURANGABAD

IMPACT FACTOR - 2017
4.954
www.sjifactor.com

+ EDITOR +

Assit. Prof. Vinay Shankarrao Hatole

M.Sc (Math's), M.B.A. (Mkt), M.B.A (H.R),
M.Drama (Acting), M.Drama (Prod & Dir), M.Ed.

+ PUBLISHED BY +



Ajanta Prakashan
Aurangabad. (M.S.)

डॉ. विद्या एस. शिंदे

असोसिएट प्रोफेसर, आय.सी.एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी.

संत काव्य का स्वरूप

हिंदी संत काव्य भक्तिकाल की प्रमुख काव्यधारा है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का सुवर्णकाल माना गया है। काव्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से इसका विशेष महत्व है। जहाँ एक ओर इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक तथा लौकिक-आध्यात्मिक महत्ता अक्षुण्ण है, वहीं दूसरी ओर यह युग भाषा, काव्य शैली आदि की दृष्टि से बेजोड़ है। भक्तियुगीन कवियों ने जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की और वसुदैव कुटुंबकम् का संदेश दिया तथा अमृतदय और निःश्रेयस दोनों दृष्टियों से मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया, उसने न केवल तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था को बहुत दूर तक प्रभावित किया अपितु आज भी उसकी उपादेयता और सार्थकता विद्यमान है।

उद्देश्य

1. संत कवियों ने सभी प्रकार की संकिर्णताओं, रुढ़ियों तथा गलत बाह्याचारों का विरोध करते हुए मानवतावाद का संदेश दिया उसे सबके भीतर प्रेरित करना।
2. दार्शनिक मतवाद अथवा कोरे तर्क के चक्कर में न पड़कर स्वानुभूति पर बल दिया। शताब्दियों से शोषित एवं पीड़ित तथाकथित निम्न वर्ग के उत्थान की घोषणा करके समाज में व्याप्त छुआछुत, उँच-नीच की भेद भावना तथा जन्मगत श्रेष्ठता का विरोध किया उसे वर्तमान समाज के सामने रखना है।
3. शास्त्रवचन की अपेक्षा अनुभव को महत्ता देते हुए सत्य का उद्घाटन किया। इन कवियों ने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता का उद्घोष करते हुए परम सत्य को निर्भीक वाणी में किस तरह अभिव्यक्त किया है उसको समाज के सामने लाने का प्रयास करना।
4. हिंदी संत काव्य मूलतः भारतीय चिंतन की स्वामाविक अभिव्यक्ति है, युगों युगों की आध्यात्मिक चिंता का प्रतिफलन है। वस्तुतः सामाजिक दृष्टि से यह न्याय और समानता का आंदोलन है। वर्तमान जगत् के साथ इसे जोड़कर प्रस्तुत करना है।

संत शब्द का अर्थ और व्याप्ति

आलोच्य कवियों और उनकी रचनाओं की समीक्षा के पूर्व संत शब्द के सामान्य और रुढ़ अर्थों की मीमांसा करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि 'संत' शब्द व्यापक अर्थों में साधु, त्यागी, ईश्वर, भक्त, सज्जन, महात्मा, पवित्र आत्मा आदि का द्योतक है। किंतु आधुनिक समीक्षा के क्षेत्र में यह शब्द ऐसे कवियों के लिए सीमित और रुढ़ हो गया है कि जो ब्राम्हण वेद पुराण में आस्था नहीं रखते थे, अवतारवाद में जिनकी कोई निष्ठा नहीं थी, जो प्रायः पिछड़े वर्गों से संबंधित थे। जो जाति बंधनों को मानते नहीं थे। वस्तुतः समग्र प्राचीन और मध्यकालीन धार्मिक साहित्य में संत और भक्त में कोई अंतर नहीं माना गया है। मध्यकाल में जब भक्ति आंदोलन अपने शिखर पर था और ईश्वर के सगुण निर्गुण रूपों की विविध रूपों में साधना अर्चना हो रही थी, तब भी संत और भक्त में कोई अंतर नहीं माना है। हिंदी साहित्य का संत साहित्य अत्यंत व्यापक है। समूचे उत्तर भारत में संत मत से संबंधित अनेक मठ, आश्रम दिखाई देते हैं। दक्षिण भारत में भी इसका प्रसार दिखाई देता है।

संत काव्यधारा में कबीर का महत्व श्रेष्ठ माना गया है। वह एक समाजसुधारक, साधक और कविरूप में सर्वाधिक महिमा संपन्न रहा है किंतु वह हिंदी के प्रथम संत कवि नहीं थे। उनके आविर्भाव के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व से ही संत काव्य की अविच्छिन्न परंपरा मिलती है। जिनमें नामदेव, जयदेव, त्रिलोचन, संत बेनी आदि मुख्य थे। इन सब में रामानंद का व्यक्तित्व मुख्य था। एक प्रकार से वह हिंदी भक्ति आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार अथवा प्रवर्तक माने गये हैं। उन्होंने भक्ति का द्वार सबके लिए खुला कर दिया। वस्तुतः यह सामाजिक वैषम्य से बहुत क्षुब्ध थे। सच्चे अर्था में मानवतावादी संत थे। वह जन्म के आधारपर किसी प्रकार के वैषम्य के कट्टर विरोधी थे। अतः उन्होंने सामाजिक और धार्मिक दृष्टी से उपेक्षित और शोषित गनुष्यों के उद्धार का बीड़ा उठाया। इसी उदार भावना से प्रेरित होकर उन्होंने बारह शिष्य बनाए जो विभिन्न जाति और वर्गों के थे। उसमें अनंतानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहरियानंद और भोगानंद ब्राम्हण थे। पीपा क्षत्रिय, कबीर जुलाहा, सेन नाई, घना जाठ और रैदास चमार थे। इसी काल में मराठी में भी अनेक संतों की परंपरा रही। उसमें नामदेव का स्थान उच्च माना गया है। उन्होंने मराठी के साथ साथ हिंदी में भी समाजसुधार का कार्य किया।

संत नामदेवः— हिंदी और मराठी काव्य में सामाजिक चेतना

संत नामदेवजी का जन्म परिचय

महाराष्ट्र में नामदेव नाम के छ कवि देखे जाते हैं। पायः यह माना जाता है कि सर्वाधिक लोकप्रिय नामदेव वह थे जिन्होंने उत्तर भारत में कबीर के पहले भागवत धर्म का प्रचार किया था और हिंदी में भी काव्य रचना की थी। संत नामदेव का जन्म संवत् 1337 में सातारा जिले के नरसी वमनी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेट और माता का नाम गोनाबाई था। ये प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। से जाति के शिपी थे, कबीर ने इनकी भक्ति के महिमा का गान किया है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत विसोबा खेचर इनके गुरु थे। इन्होंने मराठी के अमंगों के अतिरिक्त हिंदी में भी पदों की रचना की। इनकी सभी उपलब्ध रचनाओं को डॉ. मंगीरथ मिश्र जी ने संत नामदेव की किंदी पदावली नाम से प्रकाशित किया जिसमें 230 पद और 13 साखियाँ हैं।

संत नामदेवजी के काव्य द्वारा समाज चेतना

संत नामदेव पहले सगुण भक्त थे। किंतु बाद में ये निर्गुणवादी हो गये। वे उस ब्रह्म की साधना में लीन हो गये और अलख निरंजन देव है, घट घट व्यापि है इसके उपर उनका विश्वास बैठ गया। वह कहते हैं—

“हिंदु पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत,

नमे सोई सोविया, जहं देहुरा न मसीत।”

नामदेव ने उसे राम, केशव, विठ्ठल, रहीम, करीम आदि अनेक नामों से पुकारा है। उनके मत से नाम भेद से रूप में अंतर नहीं आता। नामदेव ने बाह्याचार, मूर्तिपूजा, विभिन्न देवी देवताओं की भक्ति की भर्त्सना की है। राम नाम के आराध्य है, जो घट में ही विद्यमान है। नामदेव ने उन्हें खसम और भर्तार कहा है।

बचपन से माँ पिताजी द्वारा प्राप्त भक्ति सगुणवादी थी। परंपरागत भक्तिभावना को अपनाते हुए बचपन से नामदेव भक्तिरस में डूबे रहे। मगर सच्ची ईश्वर भक्ति का मतलब वह नहीं जानते थे। सामान्य मनुष्य की तरह ईश्वरीय चमत्कार पर भरोसा रखकर उन्होंने पांडुरंग को अपना ईश्वर मानकर उनका नामस्मरण आरंभ किया। पांडुरंग का ध्यान करते समय वह अपने संसार से विरक्त होने लगे। तब घरवालों ने इनका विरोध किया। ईश्वर के सगुण भक्ति में वह सदा विलीन रहने लगे। उन्हें अपने इस भक्ति पर गर्व होने लगा था। लेकिन तब मुक्ताई उस अहंकार को देखकर कहती है—

अखंड जयाला देवाचा गजर

कारे अहंकार नाही गेला।

इसका अर्थ जिसके साथ हरदम ईश्वर रहता है उसके पास गर्व भावना कैसे आ गयी? ज्ञान के बिना भक्ति व्यर्थ है ऐसा वह उपदेश करती है। तब संत गोरा कुंगार उनकी परीक्षा लेते हैं और कहते हैं कि भक्ति के मार्ग में वह अभी तक कच्चा है। तब वह अपमानित हो जाते हैं। उसके बाद वियोबा खेचर को वह अपना गुरु मानकर उनसे दीक्षा प्राप्त करते हैं। तभी ईश्वर चराचर में है इस बात पर उनका विश्वास बैठता है। तब वह कृतार्थ होकर कहते हैं—

सद्गुरु नायकें पूर्ण कृपा केली

निज वस्तु दाविली माझी गज।

गुरु के प्रति निष्ठाभाव ज्ञान प्राप्ति का साक्षात्कार और अहंकार का नाश इस घटना द्वारा आज भी सामान्य लोगों को भक्ति भावना की चेतावनी प्राप्त होती है। इसलिए वह कहते हैं—

सर्वकाली परमात्मा परमात्मा आहे सर्व देशी।

भावना हे अहर्निशी दृढ धरी।

ईश्वर चराचर में व्याप्त है, उसकी प्राप्ति की लालसा अच्छे कर्म द्वारा प्राप्त हो सकती है इस ज्ञान का दर्शन होता है। भक्ति में आत्मनिरीक्षण द्वारा मन की शुद्धि को महत्व दिया गया है इस बात का साक्षात्कार नामदेवजी का हो जाता है। तब वह कहते हैं कि भक्ति का जीवन के साथ अटूट रिश्ता है, इसलिए गृहस्थी जीवन का कर्तव्य निभाते हुए सहजसाध्य भक्ति ही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकती है। भक्ति का मानवी जीवन के साथ संबंध होने के कारण विवेकपूर्ण आचरण करना ही भक्ति का लक्ष्य माना गया है। संत नामदेवजी ने अपनाया हुआ यह भक्तिमार्ग मानव कल्याण की भावना प्रेरित है।

संत नामदेव गृहस्थाश्रम में रहकर कर्म करते हुए भक्ति करनेवाले मनुष्य को श्रेष्ठ कहते हैं। उनका कहना है कि, गृहस्थी जीवन कष्टदायी है, उसमें अनेक कठनाईयें हैं मगर उसे आसानी से झोलनेवाले मनुष्य ही भक्ति के मार्ग पर चल सकती है। संसार के भवसागर को संयम के साम पार करनेवाले मनुष्य ही सच्चा साधक है। निरवार्थी भाव से किया हुआ हर कर्म ईश्वर की भक्ति है। इसलिए वह कहते हैं—

रांगनि रांगड सीवनी सिवड

रामनाम बिन धरि अन् जीवड

भगति करड करिके गुन गावड

आठ पहर अपना खसम धिआवड।।

जिस मनुष्य का जीवन राममय हो गया है। वह दिन, रात कर्म करते हुए नामस्मरण करता है, हर सौंस लेते हुए और छोड़ते हुए राम नाम का नामस्मरण करता है उसी अवस्था का सहज समाधी की अवस्था कहते हैं। नामदेव ऐसी ही समाधी अवस्था में रहते हैं।

कबीरदास के काव्य में कर्मचेतना

कबीरदास एक कवि, साधक और समाजविचारक के रूप में संत काव्य परंपरा के सर्वात्कृष्ट व्यक्तित्व संपन्न महापुरुष थे इसलिए वे सभी धर्म के अवलंब में श्रद्धाभाजन बने। जहाँ समकालीन संत महात्माओं ने उन्हें सम्मान दिया, उनके शिष्यों और अनुयायियों ने उन्हें ईश्वर का अवतार तक घोषित कर दिया, वही वह उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के केंद्रबिंदु बने। उन्होंने जिस मानव धर्म का प्रचार किया वह सभी प्रकार के मताग्रहों के तथा धार्मिक मान्यताओं से रहित है। वह ऐसे सत्य पर आ

धारित है जो किसी भी प्रकार की वेशमूषा कर्मकांड से रहीत हैं। उनका उपास्य मंदिर, मस्जिद तक सीमित नहीं हैं, वह सर्वव्यापी तथा घट-घट व्यापी हैं। उनकी भक्ति किसी धर्मग्रंथ पर आधारित नहीं है। वह अंदर व्याप्त हैं। वस्तुतः निर्गुणमार्गी काव्य सामाजिक सांस्कृतिक जागरण की उपज हैं। जिसमें पंडित पुरोहित वर्ग का वर्चस्व टूटता है। कबीरदास इस नूतन कांति के अग्रदूत माने गये हैं। वह स्वभाव के संत थे, वे कर्म के साधक और सुधारक थे। कर्म चेतना द्वारा समाज कल्याण उनका लक्ष्य था। दया, क्षमा, अहिंसा, प्रेम, सत्य, परोपकार तथा कल्याण उनके जीवन का लक्ष्य था। उनकी कथनी और करनी में पूर्ण सामंजस्य था। इसलिए कबीर कहते हैं—

पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुवा, पंडित मया न कोई,

एक आखर पीव का, पढ़ै सो पंडित होई।

इस पद के माध्यम से संत कबीर ने जीवन में प्रेम को अधिक महत्व दिया है। राम नाम का महत्व समझना यही जीवन का सार है। वह आगे कहते हैं कि,

कहै कबीर सुनहुं रे संतों, धन माया संगिन गया,

आइ तलब गोपाल राइ की घरती सैन गया।

संत कबीर समाज को बुरे कर्मों का फल किस तरह भुगतना पड़ता है यह बताते हैं। जीवन में छ विकारों के मोह में फँसकर सत्य रूपी ईश्वर को भूलना अच्छी बात नहीं है। मनुष्य को अमरता का दान अच्छे और सच्चे आचरण से ही मिलता है। संत कबीरजी संसार के समस्त मनुष्यों का चेतावनी देते हुए हर एक को अपने मन के साथ सवाल पुछने पर मजबूर करते हैं। वे कहते हैं—

रे रे बुधिवंत मंडारा, आप आप ही मरहु विचारा॥

कवन सयांन कौन बौराई,

किही दुख पाइये किही दुख खाई॥

कवन सार को आहि असारा,

को अनहित को आहि पियारा॥

कवन साच कवन है झूठा, कवन करु को लकै मीठा॥

किही जरियै किहि करिये अनंदा,

कवन मुक्ति को मल के फंदा॥

रे रे मन मोहि ब्यौरि कहि, हौ तत पूछो तोहि।

संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि॥

कबीरदास सभी मनुष्यों को कर्म चेतना देते हुए कहते हैं कि, हे मन तुम बुद्धिवान हो तथा ज्ञान के मंडार हो। तुम स्वयं अपने आप ही विचार करो। जीवों में कौन चतुर है और कौन पागल अथवा मूर्ख है— वह जो विषयों में अनुरक्त है अथवा वह जो ईश्वरामिमुख है। कौनसे कर्म दुख के हेतु हैं और किन कर्मों से दुःख की निवृत्ति होती है? किसमें हर्ष है, किसमें विषाद है? किसे अहित समझें और किसे हित मानें? कौन वस्तु सार है और कौन निस्सार है? कौन प्रेम शून्य है और कौन प्रेम करनेवाला है? क्या सत्य है और क्या मिथ्या है? जीवन में कौनसी अनुभूति मधुर है? कौन वस्तुतः दुःखों से जल रहा है और कौन सुखपूर्वक जीवन बीत करता है? कौन से कर्म मुक्ति के हेतु बनते हैं और किन कर्मों के करने से गले में फंदा पड़ता है? जीवन के मूल तत्व प्रयोजन के इन प्रश्नों पर तुम स्वयं विचार करके मुझे बताओ। इस तरह कबीरदास हर मनुष्य को विचार करने के लिए प्रवृत्त

करते हैं। कर्म के प्रति सावधनता यही जीवन की सच्चाई मानी है।

निष्कर्ष

कहने का तात्पर्य यह है कि संत नामदेव तथा कबीर के उदात्त और गरिमामय व्यक्तित्व ने तत्कालीन युग को प्रभावित किया ही था, समय के अंतराल के साथ उनकी महिमा बढ़ती गयी और सा सौ वर्षों के बाद आज भी उनकी वाणी उतनी ही प्रासंगिक, सार्थक और कर्मप्रेरित है जितनी वह पहले थी, बल्कि कुछ अर्थों में आज उनके वचन पूरे समाज को सही दिशा निर्देश देने में अधिक प्रेरणामयी सिद्ध हो सकते हैं। वर्तमान समय सामाजिक- राजनितिक दृष्टि से जितना संकटपूर्ण है, धर्म, संप्रदाय और जाति के नाम पर पूरे देश में जो अराजकता, आतंक और भय व्याप्त है, मानव मानव के बीच भेद और घृणा की जो दीवारे बढ़ती जा रही हैं, असुरक्षा की जो भावना पूरी संस्कृति को नष्ट करने के लिए तत्पर है, उसमें त्राण लाने के लिए संतों की वाणी द्वारा निकली कर्मचेतना अमोघ अस्त्र का कार्य करती है। संतों के काव्य का धर्म सच्चा मानव धर्म है जो मनुष्य को जोड़ता है, तोड़ता नहीं, जिसमें ऐसी सच्चाई है जो सभी धर्मों के मूल में है, किंतु जो सभी धर्मों के बाह्याडम्बरों से और पाखंडों से रहित है। उनकी कर्मचेतना का संदेश सभी प्रकार के बनावटीपन से दूर है। वह ऐसे सत्य पर आधारित है जो हमारे भीतर निहित है। उनका अनुसंधान ही हमारा श्रेय और प्रेय है। आज मनुष्य विविध प्रलोभनों में पड़कर सत्य के प्रति समझौता करता हुआ आचरण में ढो रहा है। मुँह में रामऔर बगल में छूरी रखनेवाले ढोंगी मानवों के लिए संतों का सत्यरूपी कर्मवचन निश्चित रूप से सही दिशा दिखाने के लिए सक्षम है।

संदर्भ

1. बीजक - संत कबीर
2. कबीर हजार ग्रंथावली- संत कबीर
3. अमंगवाणी -संत नामदेव
4. गुरु ग्रंथ साहिब-गुरु नानक देव
5. संत कबीर के काव्य का भक्तिभाव-नरहरिदास
6. कबीर हजार ग्रंथावली-सं.डॉ. सावित्री शुक्ल

समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित महानगरीय जीवन

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड रत्नागिरी

ARTICLE DETAILS

Article History

Received: 05 August 2017

Accepted: 10 Sep 2017

Published Online: 15 Sep 2017

ABSTRACT

स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे सामाजिक ढाँचा टूटता विखरता जा रहा है। इस बीच जो नई परिस्थिति हमारे सामने आई है, उसने अनेक समस्याओं तथा विद्वपताओं को जन्म दिया है। औद्योगिकीकरण, सहशिक्षा, अग्रेजियत एवं उसकी नग्न यंत्रवत पाशविक सम्यता ने भारतीय जनमानस को ज्यादा प्रभावित किया है। गृहस्थ जीवन से लेकर साहित्य, कला, समाज, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में कतिपय समस्याओं का जन्म हुआ। गृहस्थ जीवन को सुरक्षित रखनेवाली और अगली पीढ़ी में मूल्य का सिंचन करनेवाली नारी इस परिवर्तन से विशेष प्रभावित हुई। स्वाधीनता के बाद औद्योगिकीकरण एवं शिक्षा से भारतीय समाज में उठी हलचल और उससे उत्पन्न समस्याएँ समकालीन कथाकारों के लिए चुनौती बनकर आयी, जिसे अभिव्यक्त करना साहित्यकारों का दायित्व बन गया। इस बदलाव की विषम प्रक्रिया को व्यक्त करने में अनेक कथाकार जुड़ गये। उन्होंने साफ महसूस किया कि गाँव की तुलना में महानगरों की स्थिति अधिक गंभीर एवं सोचनीय है। पाश्चात्य सम्यता के संक्रमण, अंधानुकरण एवं फैशनपरस्ती के परिणामस्वरूप नय नय प्रतिमान उभर रहे हैं। इन्हीं प्रतिमानों को समकालीन साहित्यकारों ने वाणी देने का प्रयास किया है।

प्रयोजन :

1. महानगरों में रहनेवालों का जीवन यांत्रिक एवं स्वकेद्रित होता है। उनकी सुख सुविधाएँ यंत्र के साथ जुड़ी हुई होती हैं। समकालीन कथाकारों ने उसे किस तरह चित्रित किया है उसे प्रस्तुत करना है।
2. यंत्र और उसके शोर के बीच रहकर व्यक्ति भी यांत्रिक बन गया है। वह दिन-ब-दिन संवेदनहीन बनता जा रहा है। समकालीन कथाकारों ने कथा के माध्यम से दिखाया है।
3. अजनबीपन, अकेलापन, संवेदनहीनता, संत्रास, तनाव, घुटन, कुण्ठा, अनिश्चितता, दोहरापन जैसी अनेक समस्याएँ जाने अनजाने में महानगरीय जीवन शैली का हिस्सा बन गई हैं। उसे कथाकारों ने अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है उसे सबके सामने प्रस्तुत करना है।

प्रस्तावना -

इस प्रकार महानगरीय जीवन उपर से जितना सहज, सरल, आकर्षक एवं सुखमय दीखता है उतना नहीं है। पाश्चात्य प्रभाव को तोड़ मरोड़ कर धारण करने की प्रवृत्ति ने महानगरिय जीवन को अंदर बाहर दोनों स्तर पर बुरी तरह झकझोर दिया है। इन विषम परिस्थितियों से बेखबर ग्रामीण जन नगर तथा महानगरों की तरफ प्रयाण कर रहे हैं जो उसके लिए घातक है। समकालीन कहानी साहित्य महानगरीय जीवन के जटिल संदर्भों से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। महानगरों की अनेक समस्याओं, परिवेशगत जटिलता और कुरता तथा इस सबके बीच अपने अस्तित्व के लिए जूझते असहाय, विवश

मानव के संघर्ष ने कहानीकार को न केवल भीतर तक झकझोर दिया है बल्कि उनकी संवेदनाओं को भी आहत किया है। यही कारण है कि समकालीन हिंदी कहानी साहित्य में महानगरीय जीवन के विविध पहलुओं की सशक्त एवं सजीव अभिव्यक्ति देखी जाती है। महानगरीय जीवन शैली का चित्रण कहानीकारों का वर्ण्य विषय रहा है। उनकी अनेक कहानियों में महानगरीय जीवन की कटु यथार्थ का चित्रण सूक्ष्मता से व्यक्त किया है।

कृत्रिम यांत्रिक जीवन -

कृत्रिम एवं यांत्रिक जीवन पद्धति महानगरीय जीवन का एक स्वाभाविक हिस्सा है। आज के इस यंत्र युग में व्यक्ति खुद मशीन हो गया है। बाहर की पार्थिव दौड़-धूप की अंधाधुंद खींचतान में उसके भीतर का सूक्ष्म इन्सान खो गया है। महानगरों का संपूर्ण वातावरण कृत्रिमता से भरा है। महानगरीय व्यक्ति के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, बातचीत एवं आपसी संबंधों में बनावटीपन झलकता है। अलमारी में सजी हुई पुस्तकें बुद्धिजीवी होने का दिखावा करती हैं, तो झोइंग रुम में सुसज्जित विलासिता की चीजे आर्थिक स्तर का प्रदर्शन करती हैं।

अज्ञेय कृत 'रोज' कहानी की नायिका मालती एक बंधी यांत्रिक जिंदगी जी रही है। मालती का व्यक्तित्व पारिवारिक माहौल में पथरा कर यंत्रवत हो चुका है। अब उसे गृहस्थी जीवन का आनंद प्रभावित नहीं करता। —मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यंत्रवत् वह भी थके हुए यंत्र के से स्वर में कह रही है—'चार बज गये—मानो

इस अनैच्छिक समय गिनने-गिनने में ही उसका मशीन तुल्य जीवन बीतता हो।¹

इस बात से पता चलता है कि इन्सान ने खुद ही ऐसी चीजों का संसार अपने चारों ओर खड़ा कर लिया है, जिनका अस्तित्व पहले कभी था ही नहीं। वह सामाजिक संरचना का एक ऐसा ढाँचा निर्मित करता जा रहा है, जिसमें वह स्वयं मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है। अपने ही हाथों से नाई चीजों के बीच उलझ चुका है। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के परिवेश में चारों ओर तेजी से हो रहे महानगरीकरण, मशीनीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण जीवन में गति, यांत्रिकता एवं शोर पैदा हुआ है। इस बीच रहकर व्यक्ति ने अपनी भावनात्मकता को खत्म कर दिया है।

संयुक्त परिवारों का विघटन –

भारतीय संस्कृति की सभ्यता संयुक्त परिवार का समर्थन करती आ रही है। वर्तमान काल में जीवन की व्यस्तता एवं अर्थ केंद्रित दृष्टि ने संयुक्त परिवार प्रथा को अधिक ठेस पहुँचाई है। अब लघु परिवार को महत्व दिया जाने लगा है। आज अर्थ के केंद्र में सारे रिश्ते एवं संबंध बिगड़ गये हैं। लालच एवं स्वार्थ की बुनियाद पर खड़े रिश्तों की बुनियाद खोखली हो गयी है। आज ग्रामीण आबादी नगर एवं महानगरों की ओर आकर्षित हुई। नगरों में आबादी की तुलना में बुनियादी सुविधा नहीं बची जिसकी वजह से अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी हो गयी। इन समस्याओं के बीच संयुक्त परिवार में रहना और जीना मुश्किल ही नहीं असंभव-सा लगने लगा। नई और पुरानी पीढ़ी के वैचारिक टकराव भी पारिवारिक विघटन का एक महत्वपूर्ण कारण है: वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ी के बीच दूरियाँ बढ़ा दी हैं। जिसमें पुरानी पीढ़ी के वृद्ध अकेले पड़ रहे हैं।

रमेश बतरा की कहानी 'हुटर' में संयुक्त परिवारों के टूटने का चित्रण किया गया है। जग्गी अपने पति के आय में अपना तथा अपने बच्चों का निर्वाह कर नहीं पाती अतः वह संयुक्त परिवार का बोझ को ढोने से साफ इन्कार कर देती है। अर्थ के कारण टूटते परिवार का चित्रण कृष्णा अग्निहोत्री की 'टुईया की अम्मी' कहानी में किया गया है। टीटू माँ-बाप को पूछे बगैर शादी कर लेता है और अपनी पत्नी के साथ अलग रहने के लिए चला जाता है। वह माँ को खाना भी नहीं देता। पिता जब शिकायत करते तब वह कहता है— "ये सब हम कहीं से लाए? मेरी भी दो लड़कियाँ हैं। इनसे कहते हैं कि ये अपना जेवर मुझे दे दे। उसे बेच मैं रुपया बैंक में जमा कर दूँगा और उसका ब्याज आसानी से खाता रहूँगा।" अंत में माँ लाचार होकर भीख मॉगती फिरती है।²

भारतीय परिवार पश्चिम के अधे अनुकरण के कारण भी टूटता नजर आ रहा है। गोविंद मिश्र की 'शापग्रस्त' कहानी इसी का प्रमाण है। नायिका पैसों की चकाचौंध में भौतिक सुख की ओर आकर्षित होकर परिवार को भी भूल जाती है। वह

पति को छोड़कर किसी विदेशी व्यक्ति के साथ जुड़कर अपने परिवार को त्याग देती है। कामतानाथ की कहानी 'मकान' में पारिवारिक विभाजन का चित्रण बारीकी से हुआ है। " इसके बाद मुन्नु दादा अधिक दिनों तक घर में नहीं रहे। उनकी पत्नी और माँ दोनों में अनबन रहने लगी। पहले तो घर में दो चुल्हे जले। —यह सिलसिला भी ज्यादा दिन नहीं चला। जल्दी ही मुन्नु दादा घर छोड़कर चले गये और धीरे-धीरे दोनों परिवारों में आना-जाना तक बंद हो गया।"³

इस प्रकार आधुनिक कहानीकारों ने संयुक्त परिवार के विभिन्न भावों को सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। परिवार में त्याग, परोपकार जैसे मूल्यों का अभाव दिखाई दे रहा है। आपसी रिश्तों में आत्मीयता का भाव दिखाई नहीं देता।

अकेलापन एवं एकाकीपन की अभिव्यक्ति—

महानगरों में संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटने के कारण अकेलेपन की समस्या बढ़ी है। यांत्रिक जीवन, व्यस्तता एवं स्वार्थ भावना ने मानव-मानव के बीच अपरिचय की दीवार खड़ी कर दी है। महानगरीय आदमी भीड़ में रहकर भी अजब सी बेचैनी और अकेलापन का अनुभव कर रहा है। अपनी दौड़ती जिंदगी में वह ठिक से न किसी से आपसी संबंध रख पाता है और न निभा पाता है। व्यक्ति अपने अकेले में जीता है और पास रहकर भी दूरियों का अनुभव करता है। अपनी प्रतिक्रिया देते हुए देवेंद्र इस्सर ने लिखा है कि —"इस अर्थव्यवस्था में स्वार्थ, भौतिक सुख, धन और पद प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण हैं। निजी रिश्तों और परिवार के विघटन में हर आदमी को अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए बेसहारा और तनहा छोड़ दिया है। वैयक्तिक रिश्तों और संयुक्त जीवन के विघटन के कारण मनुष्य एक ऐसी स्थिति से गुजर रहा है, जिसे कई नाम दिये गये हैं—एकाकीपन, अजनबीपन, अवैयक्तिकता, अलगाव और एलिनेशन।"⁴

महानगरीय परिवारों के दाम्पत्य जीवन में वैवाहिक कारणों से आये तनावों में उसका खोखलापन, रिक्तता एवं जीने की मजबूरी 'शहर-दर-शहर' कहानी में अभिव्यक्त हुई है। —"पत्नी में एक कमजोरी थी। वह शाम से दूर भागती थी। पति को शहर ने शाम के भय से मुक्त किया हुआ था, शाम उनके लिए क्लब, बाजा, प्याला होती थी। पत्नी से शाम अकेली झेली नहीं जाती। बगीचे दरख्त, मकान के दरवाजे, बंद और खुली खिड़कियाँ, खाली भरे कमरे, खाली कुर्सियों से भरा बरामदा सब मिलाकर उन्हें काटने दौड़ने थे।"⁵

निर्मल वर्मा की एवं नयी कहानी परंपरा की पहली कहानी समझी जाने वाली कहानी 'परिदे' में लतिका के अकेलेपन का उजागर किया गया है। मिस लतिका एक पहाड़ी कस्बे की कान्वेंट स्कूल में टीचर हैं। अपने प्रेमी गिरीश की मौत के बाद लिकुल अकेली पड़ जाती हैं। वह अकेलेपन में इतनी खोई है कि छुट्टियों में कही बाहर जाने के बजाय वीराने अकेले स्कूल में रहना पसंद करती है। हयूबर्ट के पूछने पर

नहती हैं— “अब यहाँ मुझे अच्छा लगता है—पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था, अब आदी हो गई हूँ”⁶ इसके अलावा अकेलापन एवं संघ शून्यता को उषा प्रियंवदा की ‘जिंदगी और गुलाब के फूल’, मोहन राकेश की ‘आद्रा’, अमरकांत की रक्तपात आदि कहानियों में अकेलेपन को वाणी देने का प्रयास किया गया है।

घुटन, तनाव एवं कुंठा —

स्वतंत्रता के पश्चात् महानगरों की तेजी से वृद्धि हुई और उतनी तीव्रता से आर्थिक वैषम्य भी बढ़ा. सामान्य जनता अभावों की चक्की में पिसती और कराहती रही. महानगरीय मध्यवर्ग की बढ़ती महँगाई, चारों ओर से जीवन को जकड़ती यांत्रिकता और सम्मान पूर्वक जीने की उसकी आकांक्षाओं ने उनके संघर्ष की तीव्रता को बढ़ा दिया है. इसमें वह वर्ग टूटता एवं घुटता रहा. घोर निराशा ने कुंठा को जन्म दिया और बेधक एकाकीपन ने उसे घेर लिया. वर्तमान समाज में हर व्यक्ति टूटता एवं घुटता नजर आ रहा है. आज व्यक्ति का जीवन इतनी विसंगतियों से भरा पड़ा है और मानसिक स्तर पर इतने अंतर्द्वन्द्व है कि व्यक्ति निरंतर घुट रहा है. वैयक्तिक जीवन में यह संघर्ष, जीवन मूल्यों की टूटन, नैतिकता के विरुद्ध अनैतिकता का दबाव तथा आपसी संबंधों में दरार आदि का तनाव के कारण है जिसकी अभिव्यक्ति सांप्रत कहानियों का प्रधान वर्ण्य विषय है.

कमलेश्वर की ‘दुःख भरी दुनिया’ कहानी में तनाव एवं निराशा का चित्रण हुआ है. बिहारी बाबू एक लाचार, विवश पिता है जिसकी आर्थिक स्थिति पतली है. बिजली कंपनी में काम करते हुए बिहारी बाबू अपने से उँचे अफसरों को देखकर अपने वर्तमान को कुढ़ते हैं. बिहारी बाबू अपने बच्चे दीपू के साथ दो-तीन घंटे माथा खपाते हैं, किंतु फिर भी दीपू पढ़ता नहीं है तो बिहारी बाबू निराश होकर तनाव महसूस करने लगते हैं. एक ही बिस्तर पर सोते हुए भी पति-पत्नी किस प्रकार एक-दूसरे से अलग और दूर चले जाते हैं इसका यथार्थ वर्णन मणिका माहिनी की ‘एक ही बिस्तर पर’ कहानी में देखा जा सकता है.—‘उसके साथ लेटे हुए उपर से तो यही लगता है कि जैसे हम एक दूसरे के हो रहे हैं या हो जानेवाले हैं लेकिन हम दोनों के दिल हमें छोड़कर कितनी— कितनी दूर उड़ रहे थे, इसका एहसास मैं आसानी से कर रही थी. उसके साथ मेरे जीवन की यही ट्रेजेडी है कि वह मेरे साथ रहकर भी मेरे साथ नहीं रह रहा होता. उसकी बाँहें मेरे इर्द-गिर्द लिपटी हुई उसके पतित्व का निर्वाह भले ही कर रही हों, किंतु उनमें किसी किस्म की गर्माहट नहीं थी. एक जाना पहचाना ठंडापन उसके रोओं से निकलकर मेरे चारों ओर फैलता जा रहा था.”⁷

शिक्षित स्त्री अधिक सजग एवं बौद्धिक हो गई हैं, अतः समाज और परिवार के साथ वैचारिक तालमेल न बैठ सकने

पर वह कुंठा तथा तनाव का शिकार हो जाती हैं. मालती जोशी की कहानी ‘मध्यांतर’ में विमल पंडित के कंधों पर घर गृहस्थी और कार्यालय का बोझ है जिसे बेलेन्स करते करते स्वयं तनाव एवं घुटन का अनुभव करती हैं. विशेषतः पति के दोहरे मापदंड से परेशान हैं. उसका पति ‘अगला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं’ का नारा लगा रहा है. जबकि बहन को चार लड़कियों के बाद लड़का होने पर वह खुशी मनाता है. तनाव बढ़ने पर विमल चीखकर कहती हैं—“औरत कहलाने को कुछ बॉकी भी रहने दिया है तुमने. सब तो निचोड़ लिया है. पैसे कमाने की मशीन रह गई हूँ मैं इसलिए मेरा रोना कल्पना सबकी आँखों में आता है. मशीन हूँ न, रोने का हक थोड़े ही है मुझे.”⁸

महानगरों की भीड़ में व्यक्ति की अकुलाहट, जीवन की वेदना, घुटन आदि आधुनिक बोध का परिणाम है. नित्य एक सा जीवन, पारिवारिक झगड़े, कार्यालय का घुटनभरा जीवन, नीरस तथा अनिश्चित वातावरण, रास्ते की भीड़-भाड़, शोर और धक्का-मुक्की आदि से व्यक्ति का मन घुटन एवं तनाव से भर जाता है. उपर से समाज के प्रति असंतोष, आर्थिक असमानता और जीवन निर्वाह की समस्या ने मानसिक तनाव को बढ़ावा दिया है. सांप्रत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था इतनी भयानक और सशक्त होती जा रही है कि उसमें जीने वाले साधारण मनुष्य के प्राण निराशा, घुटन, पीड़ा आदि से छटपटा रहा है. मजबूरी और विवशता में व्यक्ति में कुंठाएँ और विकृतियाँ उत्पन्न कर दी हैं.

निष्कर्ष —

महानगरीय जीवन में मनुष्य के मन एवं मकान का धरातल शून्यः शून्यः सिकुड़ता जा रहा है. रिश्ते दिल से नहीं बुद्धि एवं रुपयों के आधार पर निश्चित किये जाने लगे हैं. दो पीढ़ियों के बीच में आत्मसम्मान की जगह अहम् जागृत हुआ है जिससे दोनों के बीच दूरियाँ बढ़ रही हैं. महानगरीय स्पर्धा, महँगाई और व्यस्तता ने पारिवारिक भावात्मकता को खत्म कर दिया. आवास समस्या ने माता-पिता को साथ न रखने के लिए लोगों को मजबूर किया है. स्त्री-पुरुष अपने पद, प्रतिष्ठा एवं महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु चोरी छिपे अपनी मर्यादा एवं संस्कारों को तोड़ रहे हैं. नाजायज संबंधों को स्वीकारने लगे हैं. कहीं आर्थिक शोषण होता है, तो कहीं शारीरिक. इन सभी की पूर्ति के अभाव में महानगरीय मनुष्य तनाव, कुंठा एवं संत्रास का अनुभव कर रहा है. ऐसी अनगिनत सवालियाँ और समस्याओं के जरिये महानगरीय जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत करने का समकालीन कहानीकारों ने सार्थक प्रयत्न किया है.

दर्भ ग्रंथ -

1. कथान्तर -सं. परमानंद श्रीवास्तव एवं डॉ. गिरीश रस्तोगि-पृष्ठ-67
2. दूसरी औरत- कृष्णा अग्निहोत्री-पृष्ठ-109
3. तीसरी सॉस-कामतानाथ-पृष्ठ-95
4. साहित्य और आधुनिक युगबोध-देवेन्द्र इस्सर-पृष्ठ-3
5. संपूर्ण कहानियाँ खंड-गिरिराज किशोर-पृष्ठ-24
6. परिदे -निर्मल वर्मा-पृष्ठ-143
7. खत्म होने के बाद -पृष्ठ-14
8. मध्यांतर -मालती जोशी-पृष्ठ-97

ISSN 2231-2137

CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA

A Peer-Reviewed Multi-Disciplinary International Journal

Volume : 8 Issue : 1 (II) March, 2018

Dr. Deepak Nanaware

Editor-in-Chief

www.contemporaryresearchindia.net

UGC Approved Journal No. 62441

Indexed in Indian Citation Index

NAAS Score 2018 : 3.23

Impact Factor : 0.956 (GIF)



समकालीन कविता का स्वरूप व दृष्टी

डॉ. विद्या शशीशेखर शिंदे, आय. सी. एस. महाविद्यालय, भडगाव-खोंडे, खेड, रत्नागिरी

Received: 28/02/2018

Edited: 07/03/2018

Accepted: 15/03/2018

सारांश: साठोत्तरी कविता में आधुनिक काल में जो कविता लिखी गयी उसे हम समकालीन कविता की दृष्टी से देखते हैं। उसमें यंत्रयुगीन मानव के भीतर का अकेलापन, आत्मीयता से दूर होती हुई भावना दिखाई देती है। आज समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर भारतीय आदर्श संस्कृति से दूर हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक न्हास की प्रक्रिया का आरंभ हो चुका है। पाश्चात्य भाषा का रंग हमारी भाषा पर भी चढ़ गया है जिसके कारण भाषा के नष्ट होने का भय भी व्यक्त हो रहा है। प्रस्तुत शोध निबंध में समकालीन हिन्दी कविता में ने जो नयी करवट ली है उसे व्यक्त किया गया है। यह कविता समाज को नयी चेतावनी देने की क्षमता रखती है। कवि हमें आज की समस्याओं का सामना करने के लिए चेतावनी देते हैं। समकालीन कविता में आत्मीयता की तलाश करनेवाली कविताओं के द्वारा कवि हमें किस तरह जागृत करने का प्रयास कर रहा है उसका वर्णन किया है। वर्तमान समाज में मूल्यों के इस भारी संकट को कविद्वारा किस तरह चित्रित किया है उसे सबके सामने लाकर मनुष्य के भीतर हलचल पैदा करके समस्याओं से सजग किया गया है। आज अंग्रेजी भाषा भारतीय सम्यता की पहचान बनती जा रही है। समकालीन कवी इस यथार्थ को निर्भिकता से व्यक्त करके पाठकों को जागृत कर रहा है। समकालीन कवि की क्रांतिकारी भावना का उजागर करने का प्रयास इस शोध निबंध द्वारा किया गया है।

1. प्रासंगिकता

समकालीन कवी उदय प्रकाश, अरुण कमल, कुमार कृष्ण, राजेश जोशी, कुमार अम्बुज, ज्ञानेन्द्रपति, मंगलेश डनराल, बोधीसत्व, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अशोक वाजपेयी, निर्मला पुतुल, किरण अग्रवाल, प्रभा मजुमदार आदी कवियों की प्रकाशित कविताओं का अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि समकालीन कविता का स्वरूप और दृष्टी परिवर्तित हो रही है। कवि ने अपने समय के प्रश्नों को जागृत करने का प्रयास किया है। हमें इन कविताओं का अध्ययन करके यथार्थ के प्रति सजग होकर चेतना प्राप्त करनी है।

2. विषय क्षेत्र

अ) समकालीन कविता के द्वारा कवि हमें बता रहे हैं कि आज आत्मीयता किस तरह खत्म हो रही है। आज मनुष्य घर की आत्मीयता को तलाश कर रहा है लेकिन उसे वह प्राप्त नहीं हो रही है। कवियों कि चुनी हुई पंक्तियों द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

ब) आज समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो रही है और अपनी संस्कृति से किस तरह दूर जा रही है उसका वर्णन इस समकालीन कवि ने किस तरह किया है और परिणाम स्वरूप सांस्कृतिक न्हास की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी जो हमारे जीवन पर दृष्टप्रभाव डाल रही है उसे यहाँ स्पष्ट किया गया है। भाषा के नष्ट होने का भय भी व्यक्त किया गया है।

3. विषय उपलब्धि

समकालीन कविता ने आज नयी करवट ली है। उसका तेवर और प्रवृत्ति बदल गयी है। इस काल के कवि ने अपने समय को अत्यंत निकटता से देखा, परखा और व्यक्त किया है। यह कविता पाठकों को चेतावनी देने की क्षमता रखती है। वह हमें आज के समाज की आराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत कराती है जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। कवि हमें किस तरह आज की समस्याओं का सामना करने के लिए तत्पर कर रहे हैं उसका वर्णन करके समाज में जागृती लाने का प्रयास इस शोध अध्ययन से किया गया है।

समकालीन हिन्दी कविता में आत्मीयता की तलाश

कुमार कृष्ण की 'पहाड पर नदियों के घर' इस कविता द्वारा कहते हैं -

‘हम नहीं पुछते उस आदमी से
उन छोटे-छोटे रिश्तों के बारे में
जिनको उठाकर बिना दिये उसने
पहाड जैसे साठ बरसा।

आज रिश्तोंका महत्व नष्ट हो रहा है। सब लोग धन के पिछे पागल होते जा रहे हैं। बड़े लोग आज भी उन रिश्तों को याद करके समय अच्छी तरह बिता रहे हैं। आज मनुष्यों को किसी से दो बाते करने और किसी की दो बाते सुनने का वक्त नहीं है वहा किसी के बारे में सोचने की बात करना मुश्कील है। हमारी भारतीय संस्कृति

‘अतिथी देवो भव’ के रूप में मानी जाती थी। संयुक्त परिवार का मेलजोल हमारी संस्कृति सम्यता मानी जाती थी। लेकिन आज मनुष्य अकेलापन महसूस कर रहा है। उन दिनों की याद करते हुए कवि कहते हैं—

वहा बाबा थे, दादी थी, माँ और पिता थे
लडते-झगडते भी साथ साथ रहते थे सारे भाई बहन
कोई न कोई हर वक्त बना ही रहता था घर में
पल-दो-पल को बिठा ही लिया जाता हर आने वाले को
ताना देकर शायद ही कभी कोई लौटा होगा घर से।

यहाँ कवि पुराने जमाने की याद को ताजा करके पाठकों का ध्यान आकृष्ट करके उन्हें चेतावनी दे रहे हैं। आज एकल परिवार की यह स्थिति है की अगर सभी को काम के कारण बाहर जाना पड़ रहा है तो घर अकेला छोड़ना पड़ता है। बड़े लोग शहर में रहने लायक नहीं हैं ऐसा बच्चों का कहना है। ऐसी स्थिति में आनेवाला मेहमान फोन करके ही आपके घर आ सकता है या ताला देखकर वापस जा सकता है। मेहमान के प्रति आदरभाव, स्नेहभाव कम होता दिखाई दे रहा है। आज मनुष्य धन के पिछे इस तरह भाग रहा है कि उसे अपने लोगों के लिए समय नहीं मिल रहा है आज सुख में शरीफ होने के लिए भी किसी के पास समय नहीं है इसी को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं—

कम हो रहा है मिलना-जुलना
कम हो रही है लोगों की जान-पहचान
सुख दुःख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग
तार(कॉट्सअप) से आ जाती है बघाई और शोक संदेश।

आज लोग सुख दुःख में उपस्थित लोगों द्वारा भावनाओं का जिस तरह से संचार होता है उस तरह का संचार, संचार माध्यमों द्वारा प्रेषित बघाई और शोक संदेश नहीं कर सकते। सुख दुःख के मौके पर उपस्थित लोगों के बघाई और शोक संदेश जितने प्रभावी और संवेदनशील होते हैं उतने संचार माध्यमों द्वारा हो ही नहीं सकते। आज मनुष्य स्वार्थी बनता जा रहा है वह धनलालुपता के कारण प्रेम, सहानुभुती, आत्मीयता इन चीजों को भुलकर भौतिक सुविधाओं के पिछे पड़ा हुआ है। पुराने जमाने में गाँव के लोग एक दुसरे के साथ अपनत्व का रिश्ता जोड़कर रखते थे। सब एक दुसरे को अच्छी तरह पहचानते थे लेकिन आज शहरों में और गाँव में भी ‘पलेंट’ संस्कृति के कारण कोई एक दुसरे को पहचानता नहीं है। इसी कारण जो स्थिति पैदा हो गयी है उसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

बाबा को जानता था सारा शहर
पिता को भी चार मोहल्ले के लोग जानते थे
मुझे नहीं जानता मेरा पड़ोसी मेरे नाम से
अब सिर्फ एलमन में रहते हैं
परिवार के सारे लोग एकसाथ।

आज संयुक्त परिवार बिखर रहा है लेकिन मनुष्य आत्मकेंद्रित होकर समाज से भी कट रहा है जिसे समाज के लिए अच्छी स्थिति नहीं कह सकते। आज अहंकार के बढ़ने तथा रिश्तों के फोटे परायेपन के कारण अकेलेपन, अजनबीपन की स्थिति पैदा हो रही है। आज युवा पिढ़ी भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाने तथा अपने सामाजिक स्तर को बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। उसके लिए किसी भी अनैतिक मार्ग से धन प्राप्त करने की लालसा बढ़ रही है। ‘पलेंट’ संस्कृति की चकाचौंध में बुढ़लोगों के लिए घर में जगह नहीं है। उन्हें आश्रम में पहुँचाकर बच्चे चैन की साँस लेते हैं। लेकिन अपने बच्चों के सामने वह कौनसा आदर्श रखते हैं इसकी चिंता उन्हें नहीं है। खुद मुल्यहीन जिंदगी जिते हुए दुसरों को और अपने बच्चों को भी झूठ, बेपर्वाही, अनैकिकता सीखा रहे हैं। आज आप जो आचरण करते हैं उसका अनुकरण कल आपके लिए बच्चे कर सकते हैं इसकी चेतावनी कवि पाठकों को देना चाहते हैं।

राजेश जोशी की कविता पुस्तक ‘दो पक्षियों के बीच’ की कविता ‘तीन शोकगीत’ में कवि यह कहना सही है—

हमें कितना अकेला किया है हमारे समय ने, समाज ने
स्वजन भी इसके अपवाद नहीं है।

आज मनुष्य ने अपनी जवानी में धन के पिछे सबकुछ लुटा दिया है। सबकुछ प्राप्त करने के बाद ज बवंह पिछे देखता है तब उसे पता चलता है कि रिश्ते बचे ही नहीं हैं। मानवीय संदना नष्ट होती जा रही है। इस मुल्यविहीन परिवेश से उत्पन्न विसंगतियों को देखकर ही समकालीन कवि आज उस घर की तलाश के लिए बाध्य हुआ है जहाँ ये मुल्य मौजूद हो और विसंगतिमापन न सके। उदय प्रकाश की ‘रात में हारमोनियम’ पुस्तक की कविता ‘हम वही हैं’ में कवि को बड़ी अम्मा से बचपन में जो स्नेह मिला उसे आज याद कर वापस उसे पाने की चाह में कह उठता है—

लौट कर फिर आते हैं हम तुम्हारे पास

लेकर अपनी वही पुरानी निर्मरता

किसी यत्नपूर्वक मुलाई गयी चीज को बेशर्मी से फिर-फिर
फिर से माँगने अन्न।

मतलब यह है की आज मनुष्य भौतिक सुविधाओं के पिछे मुल्यहीन होते जा रहे हैं। जीवन में किसे महत्व देना है इसकी समझदारी सही समय पर आना बहुत जरूरी है। समकालीन कवि इसी बात की चेतावनी देने के लिए समाज के यथार्थ का दस्तावेज कविता के माध्यम से स्पष्ट कर रहे हैं।

समकालीन हिन्दी कविता द्वारा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और भाषा का संकट का वर्णन—

समकालीन हिन्दी कविता भाषा गायब होने की चिंता तथा उसे बचाने की कवायद को व्यक्त करती है। निर्मला पुतुल की कविता पुस्तक ‘नगाडे की तरह बजते शब्द’ की कविता ‘मेरा सबकुछ अप्रिय है’ उनकी नजर में भाषा के गायब होने के भय को साफ देखा जा

कता है। आज लोगों के जीवन में बदलाव आ रहा है। अपने को भी बनने की होड़ में अनेक चीजें—भाषा, चाल-चलन, रीती रिवाज, नावा, ओदावा में भी यह बदलाव स्पष्ट झलकता है। इस बदलाव देखकर कवि कहते हैं—

मजाक उड़ाते हैं हमारी भाषा का
हमारे चाल-चलन, रीती रिवाज
कुछ भी पसंद नहीं उन्हें
पसंद नहीं है हमारा पहनावा, ओदावा।

पाश्चात्य लोग हमारे बीच में रहते हुए भी हमारी भाषा नहीं सीखना चाहते। हमारे लोग उनकी भाषा को अपनाकर खुद को सम्य कहलाते हैं। ये लोग पूरी तरह से परिचित सभ्यता का अन्धानुकरण करना चाहते हैं और हमसे भी ऐसी अपेक्षा रखते हैं क्योंकि उनका तर्क है—सभ्य होने के लिए जरूरी है उनकी भाषा सीखना, उनकी तरह बोलना, बतियाना, उठना, बैठना।

जरूरी है सभ्य होने के लिए उनकी तरह पहनना—ओढ़ना। आधुनिक काल के सभ्य लोगों की चाहत को देखकर यह डर लगने लगा है कि कहीं हमारी भाषा और संस्कृतिलुप्त न हो जाय। वह भाषा जिसमें हमारे जीवन की धड़कने व्यक्त होती है। हमारी भाषा, चाल-चलन, रीती-रिवाज, पेहराव में बदलाव आने पर जाहीर है कि उनसे संबंधित शब्दावली में भी बदलाव आयेगा और एक दिन हमारी भाषा ही नष्ट हो जायेगी। कवयित्री ने इस बात को तखूबी पहचाना है और इस स्थिति से पाठकों को परिचित कराके इस बात पर सोचने के लिए मजबूर किया है। अंग्रेजी भाषा बच्चों के पढ़ने का माध्यम बनता जा रहा है।

आज मनुष्य अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए और अपना जीवन स्तर उँचा उठाने के लिए इतना व्यस्त है कि उसके पास किसी के लिए समय नहीं है। पुराने जमाने में लम्बे लम्बे पत्रों की मीयता से भरी भाषा जो भावनात्मकता और मैत्री के रिश्तों को दर्शाती थी जो आज गायब हो रही है। इस स्थिति को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं—

चार पन्नों के पत्र
ई-मेल की
दो लाइनों में
सिमटने लगे
या साल दो साल के
अन्तराल में
एकाध फोन कॉल में।

समय की इस रफ्तार में इसान आत्मकेंद्रित हो रहा है और वार्थीपन का शिकार हो रहा है। उसे इन चिजों से कोई लेना-देना ही है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसी तरह के विचार विश्वनाथ साद तिवारी 'कविता पुस्तक' 'शब्द और शताब्दी' की कविता 'शब्द' देखने को मिलते हैं।

कवि इस भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—
शब्द सृष्टी की पुंजी है
बेलना होठों की कसरत नहीं
लिखना उँगलियों का खेल नहीं
शब्द 'होने' का सबूत है
वह एक विराट मौन को तोड़ता है
एक निबिड़ अन्धकार से उबारता है।

इस तरह भाषा के गायब होने पर एक तरफ बात की जा रही है। भाषा के गायब होने के भय को समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा स्पष्ट करके उनके दुष्परिणामों को भी व्यक्त किया है। इसके साथ-साथ इस स्थिति से निपटने का रास्ता भी दिखाया है। सिमे देश का बड़ा हिस्सा मानसिक गुलामी का शिकार होने से बच सके। कवि आज के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए आनेवाले कल को चेतावनी देना चाहता है। क्योंकि व्यापक जिवन अनुभव ही भाषा को जिवन और प्राणवान बनाते हैं।

Achievement from the Research Paper

समकालीन कवि ने अपने परिवेश से प्रभावित होकर वर्तमान के सच की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। आज का भारतीय परिवेश निश्चित ही मुल्यहिनता की स्थिति में गुजर रहा है। मुल्य की अवहेलना करके इमारा जिवन कभी सुखी नहीं हो सकता। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मुल्यों को छोड़ने का आग्रह सभ्यता की नहीं बल्की असभ्यता की निशानी है। जिस रफ्तार से आज हम अपने मुल्यों में आस्था खोते जा रहे हैं तथा तत्कालीन जिवन को सुखी बनाने हेतु यंत्र की मरह काम कर रहे हैं, वह एक असुरक्षित भविष्य का द्योतक है। वर्तमान समाज में मुल्यों के इस भारी संकट को समकालीन कवितर द्वारा किस मरह चित्रित किया है उस तथ्यों को प्रतिपादित किया है।

Summary of the Findings

समकालीन कविता ने आज नयी करवट ली है। कवि ने अपने समय को अत्यंत निकटता से बारीकी से देखा है और अनुभूत करके उसे वाणी दी है। तभी तो अपने समय के प्रश्नों को व्यक्त करके सार्थक तथा कालजयी तथा पाठकों को चेतावनी देने की क्षमता रखते हैं। कवि ने आज के संदर्भ में ऐसे महत्वपूर्ण सवाल को उठाया है जो कभी पहले उठाये नहीं गये। आज समकालीन कविता का स्वरूप और दृष्टी बदली हुई है। वह हमें आज के समाज की अराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत कराती है जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। वह हमें अपने समय की चुनौतियों को व्यक्त करके दनका सामना करने के लिए तैयार करती है ताकि हमारा सबका जिवन जीने लायक बने और सुंदर दुनिका का निर्माण हो सके। असंगतियों से भरे इस समाज में समकालीन कविता जिवन को

बेहतर और जीने लायक बनाकर उसकी सार्थकता को चरितार्थ करती है। सच में, समय से गहरे स्तर पर कविता यह जुड़ाव श्रेष्ठ कवि कर्म की कसौटी कही जा सकती है। समकालीन कविता में सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्य किस तरह बिखर रहे हैं और भाषा का गायब होने का भय जो व्यक्त किया है वह चिंता को स्पष्ट करनेवाला है। आज हमारे सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्य खत्म हो रहे हैं, जिसके कारण घर, घर नहीं रह गये हैं। घर ईंट, पत्थर से नहीं बनता बल्कि इन मूल्यवान चीजों की मौजूदगी से बनता है। आज इन्सान इनसे दूर होता जा रहा है। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्य के न्हास के कारण आज अहं तथा अकेलापन बढ़ रहा है, मानवीय संवेदना तथा संयुक्त परिवार खत्म हो रहा है। हमें दन मूल्यों की ओर वापस लौटना बहुत जरूरी है। अन्यथा हमारे जिवन में दुःख सिवाय कुछ नहीं रह जायेगा। समकालीन कवि आपनी कविता द्वारा दस हार की तलाश कर रहा है जिसमें कही मूल्य बचे हुए हो। कवि हमें उस ओर आकर्षित कर रहे हैं जहाँ मूल्य बचे हुए हैं और मूल्यहिनता को प्रकटीत कर सके। रिश्तों के विघटन के कारण आपसी आत्मीयता खत्म होती नजर आ रही है उसे स्पष्ट करके कवि पाठकों को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हमें अपने अंदर झाँककर पूछना चाहिए की सचमुच हम गलत राह पर चल ता नहीं रहे हैं? अगर इसका जवाब सही है तो हमें अपने अंदर परिवर्तन लाना पड़ेगा। आज स्थिती चह है की जिसके साथ जिवन के कई वर्ष बिताए हैं उसके इस

संसार से जाने पर भी कोई खास दुःखी नहीं दिखता। सच तो यह है की दुःख तो वहा होता है जहाँ आत्मीयता होती है, लगाव होता है। हमें इन्सान होने के नाते इन बातों में परिवर्तन लाना है यह संकेत समकालीन कवि अपनी कविताओं की माध्यम से दे रहे हैं।

समकालीन कविता जिन बदलते सरोकारों से साक्षात्कार करवाती है उससे पाठक उद्देलित होता है, जागृत होता है और दन ज्वलन्त प्रश्नों को आमदने-सुलझाने की समझ अपने अंदर विकसित करता है। समकालीन कवि जिवन को बेहतर बनाने के दायित्व को बखूबी निभाते हुए नजर आ रहा है। पाश्चात्य संस्कृती के प्रति बढ़ने से व्यथित अपनी संस्कृती से दूर होते जा रहे हैं। इससे सांस्कृतिक विरासत की चिजें तो लुप्त हो रही हैं और साथ ही मानविय अभिव्यक्ती के सबसे सबलतम माध्यम भाषा के गायब होने भय भी पैदा हो चुका है। जो भाषा एक समय अंग्रेजों की भाषा मानी थी आज भारतीय सम्यता की पहचान बन गयी है। समकालीन कवि इस यथार्थ को निर्मिकता से अपनी कविता द्वारा व्यक्त करके समाज को चेतना देने का प्रयास कर रहा है। ताकी आज का मनुष्य जागृत होकर इन चीजों की तरफ गंभीरता से देखकर अपने अंदर परिवर्तन ला सके। समकालीन कवि इस दृष्टी से आज के युग के सच्चे क्रांतीकारक माने जाने चाहिए। युग परिवर्तन तभी होता है जब उसे कोई बखूबी निभा रहे हैं। प्रस्तुत शोध निबंध द्वारा इन्ही बातों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ-

1. अरुण कमल, 'पुतली में संसार' पृष्ठ 48
2. राजेश जोशी 'दो पंक्तियों के बीच' पृष्ठ 54
3. वही पृष्ठ 54
4. वही पृष्ठ 54
5. वही पृष्ठ 75
6. उदय प्रकाश 'रात में हारमोनियम' पृष्ठ 37
7. निर्मला पुतुल 'नगाडे की तरह बजाते शब्द' पृष्ठ 72
8. वही पृष्ठ 73
9. प्रभा मजुमदार 'ओ के उन्नयन' पृष्ठ 166-167
10. निर्मला पुतुल 'नगाडे की तरह बजाते शब्द' पृष्ठ 27

Printed by Deepak C. Nanaware, Palavi Printers, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and published by Shilpa Deepak Nanaware, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 on behalf of Shilpa Deepak Nanaware, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and printed at Palavi Printers, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and published at 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 editor Deepak C. Nanaware.

Disclaimer

The views expressed by the authors in their articles, reviews etc in this issue are their own. The Editor, Publisher and owner are not responsible for them. All disputes concerning the journal shall be settled in the court at Solapur, Maharashtra

RNI : DELHIN/2017/75205

वर्ष-3 अंक-9

ISSN : 2582-1679

भाषा सहोदरी



हिन्दी उपन्यास और स्त्री परिवार विमर्श

प्रासंगिकता – प्राचीन काल से सभ्यता एवं संस्कृति के सर्वांगीण विकास में स्त्रियों की भागीदारी हमेशा से महत्वपूर्ण रही है। परिवार और समाज में सहभागिता के अतिरिक्त वह निर्विवाद रूप से पुरुषों के आकर्षण का केंद्र भी रही है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता है स्थितियाँ क्रमशः बदलती हैं। जाहिर है बदलते हालात में स्त्री और पुरुष के बीच का पारस्परिक संबंध स्वाभाविक रूप से बदला भी है और बिगड़ा भी है। परिवार में महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाने के बावजूद उसकी स्थिति महत्वपूर्ण नहीं रही बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन वह आश्रित बनी रही। मानवीय डुकाई के रूप में स्त्री और पुरुष का परिवार में समान महत्व है लेकिन सच्चाई में यह दिखाई नहीं देता।

विषय क्षेत्र – स्त्री अपने ही घर में वेगानेपन के एहसास के साथ जीते जीते उसके अंदर असंतोष का घना होना धीरे धीरे व्यक्त होने लगा। उसमें अपनी शक्ति और पहचान की लालसा पैदा होने लगी। शिक्षा के साथ यह एहसास बढ़ता गया। हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में स्त्री जीवन तथा पारिवारिक समस्याओं का जिक्र दिखाई देता है।

विषय उपलब्धि – साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि वह अपने समकालीन समाज की हर गतिविधियों को प्रतिबिम्बित करता है। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा और घर से बाहर निकलने की चाह ने आधुनिक नारी को महत्वाकांक्षी बना दिया है। आज वह घर की चारदीवारी में बंद रहने की अपेक्षा बाहरी कामकाज में व्यस्त रहना चाहती है।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' की नायिका नीलिमा ऐसी ही आधुनिक है। नीलिमा और हरवंश का प्रेम विवाह हुआ है। नीलिमा महत्वाकांक्षी होने के कारण दोनों का वैवाहिक जीवन तनावग्रस्त रहता है। दोनों एक-दूसरे के लिए अपने स्वभाव को बदलना नहीं चाहते इसलिए आपस में टकराते रहते हैं। नीलिमा का व्यक्तित्व एक अंधेरे बंद कमरे के समान अवरुद्ध है। वह अहंवादी नारी है। जिसके कारण परिवार संबंध बिगड़ जाते हैं।

भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' नामक उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक भाव प्रकट किया गया है। रेखा जैसी पढ़ी-लिखी स्त्री की महत्वाकांक्षाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। वह स्त्री पुरुषों के साथ स्पर्धा करती हुई सफलता के शिखर छूने लगती है। यहाँ तक पहुँचने के लिए उसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। अपनी भावनाओं को कुचलना पड़ता है। पति, परिवार और बच्चों का मोह त्यागना पड़ता है।

सुरेंद्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में सिलबिल के वर्षा वशिष्ठ बनने की संघर्ष गाथा है। वर्षा परिवार की रुढ़ियों और संस्कार कहे जाने वाले तमाम अवरोधों को तोड़ती हैं। जो एक मध्यमवर्गीय लड़की के लिए सपने भी संभव नहीं हैं, वर्षा वह सब कुछ जान लेती है। कई प्रकार के सम्मान से सम्मानित वर्षा शादी से पहले हर्ष से एक हद तक रिश्ता बनाती है। कामयाबी के उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद वर्षा की उपलब्धि उस समय व्यर्थ और बेमानी लगने लगती है। जब हर्ष आत्महत्या करता है। वह अंदर से टूट जाती है।

पितृसत्तात्मक सोच और संस्कृति के बीच महिला लेखन स्थापित परंपरा से परे जाकर अपने व्यक्तित्व की तलाश और पहचान भी है और उसकी व्यापक अभिव्यक्ति समकालीन महिला उपन्यासकारों के सहोदरी पत्रिका-2019

उपन्यासों में व्यक्त हुई है। प्रभा खेतान समकालीन महिला उपन्यासकारों में प्रमुख हैं। इनके उपन्यासों में स्त्री पहचान की एक तड़प, एक बेचैनी दिखती है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास हमारे समाज की उस चीख सच्चाई की कहानी है, जिसे हम सुनकर भी सुनना और समझना नहीं चाहते हैं।

प्रभा खेतान कृत 'आओ पेपे घर चलो' उपन्यास का परिवार परदेशी है। इसमें विदेशी संस्कृति का खुलापन और उसमें उस समस्याओं को मुख्य विषय बनाया गया है। भारतीय परिवेश में पढ़ी बड़ी प्रभा ब्यूटी थैरपी का डिप्लोमा हासिल करने वह अमेरिका जाती है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए वह पलायन करती है। शोषण की दूसरी शिकार वृद्ध आईलिन हैं जिसका चरित्र पूरे उपन्यास में अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। दो पति और पाँच प्रेमियों की श्रृंखला में अपने पहले पति की स्मृतियों को जीवित रखने का प्रयास इस का द्योतक है कि आईलिन भावनात्मक स्तर पर बेहद लूटी गयी है वह अपने 'पेपे' याने कुत्ते को बेटा कहती है और अपना सारा प्रेम पर केंद्रित करती है। स्वच्छंद समाज के विरोधाभासों, जटिलताओं पारिवारिक बिखराव को इस उपन्यास में दिखाया गया है।

उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में एक सुशिक्षित आत्मनिर्भर स्त्री की मार्मिक व्यथा कथा है जो पारिवारिक और उच्च कारणों से विवाह नहीं कर पाती है और अंत में अविवाहित रह कर निर्णय लेती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर सुषमा पारिवारिक जिम्मेदारियों में इस प्रकार जकड़ी है कि इससे निकल नहीं पाती है। कमाई होने की वजह से उसके माता-पिता ने भी कभी उसकी शादी अपेक्षित प्रयास नहीं किया। भारतीय समाज में आज सैंकड़ों लड़कियाँ हैं, आजीवन कुँआरी रहने के लिए विवश हैं। विवाह उम्र में आर्थिक समस्या तथा दहेज की माँग के कारण योग्य मिलता और एक उम्र के बाद लड़कियाँ स्वयं कुंठाओं, मानसिक और हीन भावना की शिकार हो जाती हैं।

उषा प्रियंवदा कृत एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'रुकोगी नहीं' है। इसमें एक ऐसी युवती की कहानी है, जो खुद में इस तब तक गयी है कि जिंदगी के हर मोड़ पर हताश और निराश दिखने लगी राधिका एक पढ़ी-लिखी एवं आधुनिक सोच वाली लड़की अचानक जब उसके विधुर पिता अपने से उम्र में लगभग छोटी विद्या से शादी करते हैं तब उसका अंतर्मन घायल होता है तब वह अपने मन से पिता को स्वीकार नहीं कर पाती

समकालीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री परिवार से जुड़ी हुई कहानियाँ मिलती हैं। 'स्व' की अस्तित्व के संघर्ष से पैदा हुए सवाल उपन्यास में उठाए गए हैं। उनकी समस्याएँ अनंत हैं। उन समस्याओं के बीच से ही सिद्धांत शुरु होता है। परंपराओं के दुर्ग पर प्रहार करते हुए वेतावनी के साथ जीने की चाहत पैदा की गयी है।

डॉ० विद्या शशि

रत



International Journal of Applied Research

Peer Reviewed Journal, Refereed Journal, Indexed Journal

ISSN Print: 2394-7500, ISSN Online: 2394-5869, CODEN: IJARPF

Publication Certificate

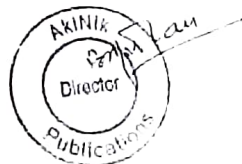
This certificate confirms that "डा० विद्या शशिशेखर शिंदे" has published manuscript titled "नरेश मेहता के काव्य में राजनीतिक मूल्य".

Details of Published Article as follow:

Volume : 5
Issue : 9
Month : Sep
Year : 2019
Page Number : 363-365

Certificate No.: 7-9-28
Date: 01-09-2019

Yours Sincerely,



Akhil Gupta
Publisher
International Journal of Applied Research
www.allresearchjournal.com
Tel: +91-9711224068



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(9): 363-365
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2019
Accepted: 23-07-2019

डा० विद्या शशिशेखर शिंदे
हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी.
एस. कॉलेज खेड, रत्नागिरी,
महाराष्ट्र, भारत

नरेश मेहता के काव्य में राजनीतिक मूल्य

डा० विद्या शशिशेखर शिंदे

सारांश

राजनीति का प्रभाव संपूर्ण देश पर पड़ने के कारण उस देश की जनता का उससे प्रभावित होना अनिवार्य है। कलाकारों की कला, कवियों की कविता, लेखकों की कृतियाँ जनता की भावनाओं को परिष्कृत कर जनता पर प्रभाव डालती हैं कोई भी साहित्यकार तभी सफल साहित्यकार कहला सकता है जब वह अपनी अनुभूति को जो उसे साहित्य का सृजन करते हुए होती है जो पाठक तक पहुँचा सके, साहित्यकार द्वारा डाला गया सद्भाव विभिन्न समस्याओं को समझने में तथा उसका समाधान करने में नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। नरेश मेहता राजनीति से खुद भी जुड़े हुए थे इसलिए उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था को नजदीक से देखा था। कवि ने कहा भी है—“राजनीति जीवन का अंग तो है साथ में राजनीति का दबाव रचना और रचनाकार पर पड़ता है और इसका परिणाम चिंतनीय होता है। राजनीति में तनाव और टकराव स्वाभाविक है। यह राजनीति की प्रकृति है यहाँ “सहमति” का कोई अर्थ नहीं है। सहमति होती भी है। तो दिखावटी होती है इसलिए राजनीति न तो विश्वसनीय होती है और न ही स्थायी। इस तनाव और टकराव से राजनेता का व्यक्तित्व निखरता है। राजनीति में उदारता की तो संभावना ही नहीं है क्योंकि वर्चस्व के लिए राजनीति में संघर्ष अनिवार्य है। विचार किया जाना चाहिए कि राजनीति और लेखन के चरित्र में क्या कोई तात्त्विक अंतर है और यदि अंतर है तो हमें चिंतित होना चाहिए कि यह अंतर लगातार लुप्त हो रहा है।” नरेश मेहता तार सप्तक के कवियों में से एक हैं। अपने काव्य में राजनीति के उत्तार चढ़ाव को उन्होंने प्राचीन आख्यानों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

वस्तु

1. नरेश मेहता ने अपने काव्य में व्यक्ति और राज्य व्यवस्था के विषय में संतुलन और मानव मुक्ति की संभावनाओं पर विचार किया है, उसे सबके सामने लाना है।
2. कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से बताया है कि किस प्रकार नेता सुचारु प्रशासन की घोषणा करते हैं और सामान्य जन अन्याय सहता है, उसे प्रस्तुत करना है।
3. शासक किस प्रकार पद प्राप्त होने पर भ्रष्ट आचरण करते हैं और न्याय, धर्म, शस्त्र खरीद लिए जाते हैं और इन षडयंत्रों और कुरताओं से भरी व्यवस्था में व्यक्ति का जीवन दुर्भाग्यपूर्ण हो जाता है उसे काव्य के माध्यम से दर्शाना है।

कूटशब्द: राजनीति, कृतियाँ, परिणाम चिंतनीय

प्रस्तावना

नरेश मेहता के काव्य में भी हमें राजनीति से प्रभावित कृतियाँ मिलती हैं। उन्होंने पौराणिक आख्यानों में आधुनिक समस्याओं का समावेश कर मानव मूल्यों की तलाश करने की कोशिश की है। वो सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इन्होंने अपनी अलग सोच से भारतीय मानसिकता को समझते हुए “महाप्रस्थान” खंडकाव्य में राज्य और व्यक्ति के संतुलित संबंधों का वर्णन किया है। “संशय की एक रात” में युद्ध की समस्या को व्यक्त किया है। “प्रवाद पर्व” में व्यक्ति, राजनीति, प्रशासन, राज्य और सामान्य जन की समुचित शालीन एवं तर्कशुद्ध वैचारिकता को प्रस्तुत करते हुए समकालीन दबावों को वाणी प्रदान की है। हमारे देश में सत्ता प्राप्ति के लिए गरीब जनता को झूठे आश्वासन देकर ठगाया जाता है। यही कारण है कि देश में गरीबी, बेकारी, स्वार्थी वृत्ति, भ्रष्टाचार तथा वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा है। गरीब जनता का शोषण हो रहा है। ऐसी स्थिति में नरेश मेहता जी का काव्य हमारे भीतर चेतावनी निर्माण कर सकता है।

राजनीति का यथार्थ चित्रण

नरेश मेहता जी ने राजनेताओं की ओर संकेत करते हुए अपनी काव्य कृतियों में आज की भ्रष्ट नीति को प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि आज के नेता देश के नाम पर कलंक हैं। वैसे कहने के लिए कहा जाता है कि देश की प्रगति नेताओं के कारण होती है। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। नेता लोग

Corresponding Author:
डा० विद्या शशिशेखर शिंदे
हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी.
एस. कॉलेज खेड, रत्नागिरी,
महाराष्ट्र, भारत

मिलने के बाद लूंचे आकाश में उड़ने लगते हैं, सारी सुख धाएँ अपना लेते हैं, हरदम देश के भविष्य की चिंता न करते वह अपने स्वार्थ की बातें सोचते हैं, इसी कारण हमारा देश सातल पर जा रहा है, "संबंध" कविता में कवि इसके प्रति अपने विचार व्यक्त करते हैं—

"वे जितना-जितना
उड़ते जाते हैं।
उतना-उतना देश
रसातल में जाता है।" 2

नरेश मेहता जी ने राजनीति को जंगल की तहजीब के समकक्ष प्रस्तुत किया है, जंगल जैसे कुर रहता है और उसका कोई नियम नहीं होता वहाँ पर सिर्फ शेर और भड़िए जैसे खूँखार जानवरों का राज चलता है, वैसे ही राजसत्ता का कानून होता है, राजनीति के क्षेत्र में जिसके पास कुर्सी आ जाती है वही सत्ता का मालिक बन जाता है और अपने ढंग से राज्य के कानून बनाता है—

"जंगल के जाग उठने का मतलब
हुकूमत की म्यान से
तलवार का बाहर निकलना होता है।
मौद से बाहर निकलता शेर" 3

राजनीति के मूल्य के बारे में कवि कहते हैं कि प्राचीन युग में भी इसका यही रूप था और आधुनिक युग में भी इसका यही रूप है, युग बदल गये परंतु राजनीति का दृष्टीकोण वैसा ही रहा है, जो कुर्सी पर बैठ जाता है वही खुदा हो जाता है, बाकि उसके आगे कीड़े-मकोड़ों की तरह हो जाते हैं, राजनीति में डर पैदा करने के लिए फौसी, हत्या, कत्लेआम शब्दों का प्रयोग मामूली सी बात हो गयी है, असीरगढ़ किले पर लिखी कविता में कवि ने यही भाव व्यक्त किया है—

"फौसी!! हत्या!! कत्लेआम!!
ये भी तो शब्द ही हैं!
सिर्फ शब्द—
जिस प्रकार तमाम दूसरे शब्द होते हैं—
जैसे फूल, आकाश, नदी
घर, रोटी, मटवा
या और कुछ भी।" 4

राजा लोगों की मर्जी संपादन करते हुए अच्छे लोग भी अपने मूल्यों को भ्रष्ट कर देते हैं, राजनीति में सच बोलनेवाला दौंव पर लग जाता है,

सत्य की अभिव्यक्ति और साधारण लोगों का महत्व—
'संशय की एक रात' इस खंडकाव्य में साधारण जनता कितनी महत्वपूर्ण होती है यह दर्शाया गया है, सीता को राजा की पत्नी और पतिव्रता स्त्री होने के बावजूद भी धोबी के द्वारा कहीं बात के कारण वनवास जाना पड़ता है, इससे यही सिद्ध होता है कि साधारण जन के पास चाहे राजा जैसी भाषा न हो परंतु वह देह से बोलता है, किसी का राजा के सामने हाथ उठे तो उसे काटा जा सकता है, परंतु जो तर्जनी उठती है उसे न काटा जा सकता न ही झुकाया जा सकता है, राम के शब्दों में—

"साधारण के पास
कब भाषा रही है?
वह तो
सदा देह से ही बोलता आया है।

हाथ झुकाया जा सकता है
पर
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी—
समय के पत्रों
और लोगों के इतिहास निरीह नेत्रों में
जब एक जलता प्रश्न
उत्कीर्ण कर देती है
जैसे प्रति-शिलालेख हो।" 5

"महाप्रस्थान" के स्वाहा सर्ग में युधिष्ठिर अर्जुन से साधारण जन के सत्व की चर्चा करते हुए कहते हैं कि कभी उन साधारणजनों के बारे में सोचो अर्जुन जो हमारे इन श्रेष्ठ साम्राज्य का ग्रास बन जाते हैं, अपने व्यक्तित्व को खो देते हैं—

"कभी उन
विचारहारा साधारणजनों के बारे में सोचो—
जो सदा अपमानित होते रहे हैं,
जिनके सत्व का अपहरण ही
हमारे ये दीप्ति सााम्राज्य हैं।" 6

सत्य को यथार्थ का रूप देकर निर्दिष्ट उँचाई पर खड़ा कर देना नरेश की काव्य कला के प्राण हैं, प्रवाद पर्य में जब सीता धोबी के कहने पर वनवास दिया जाता है तो राम के इस फैसले पर सभा जन मानने के लिए तैयार नहीं होती, तब राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि, "अधिपति का अर्थ राजा है राष्ट्र नहीं है, शासक कितना भी महान हो वह शासक ही है, वह कभी राष्ट्र नहीं बनाता, जिस दिन राजा अथवा शासक को राष्ट्र मान लिया जायेगा उसी दिन लोकतंत्र समाप्त हो जाएगा,

राष्ट्र का मूल्य—
राष्ट्र एक व्यक्ति से नहीं बल्कि संपूर्ण जातीय चेतना अथवा समग्र राष्ट्रीय दृष्टि से बनता है, व्यक्ति राष्ट्र नहीं होता, राष्ट्र से बड़ा कोई नहीं होता, इसलिए कवि कहते हैं कि—

"किसी की वैयक्तिकता नहीं
वरन
संपूर्ण की समग्रता ही राष्ट्र है।" 7

विभीषण राम का साथ तो देते हैं परंतु अपने राष्ट्र के प्रति, देश के प्रति भी अपने देशभक्ति की भावना को कायम रखते हैं और प्रजा के हित की सोचते हैं, वह यही सोचते हैं देश की दूरदर्शा को कैसे रोका जाए—

"प्रत्येक क्षण
मेरा सोचना
यहीं पर दूट जाता है।
अपने देश की दुर्दशा का
कौन कारण है?" 8

राजनीतिक मूल्य में व्यतीत कुरता के कारण भी हमारे राष्ट्र का मूल्य घटता जा रहा है, कवि ने किले के माध्यम से सारी विगत ऐतिहासिकता का वर्णन किया है, इतिहास की कुरता में सच की आवाज दबाई जाती है, राजनीति के सारे छल-कपट, राजाओं की कुर हठीली अमानवीय इच्छाएँ तांडव करती हैं, फिर इतिहास की कुरता के सामने सबकी विवशता आती है, स्त्री सिपाहियों की विवशता और कर्मचारियों का कपट सातने आता है—

"भले ही वह आमदरफल
खून टपकाते, बेडियों में कसे

वागी साहबे-आलमो
या दगाबाज, सुबेदारो, सिपहसालारो की रही हो
या जिबह के लिए ले जाए जाते,
भेड-बकरी जैसे
युद्ध बंदियों की रही हो या
फिर रोती कलपाती
दहशत जदा औरतों का
ऑसुओ से तर नूरानी चेहरों की रही हो।"⁹

इतिहास अपने आपको दोहराता है। दोहराते हुए इतिहास से हमें सबक लेना चाहिए। कभी कभी ऐसी घटनाएँ भी घटीत होती हैं जो पहले भी घट चुकी होती हैं। परंतु मानव कभी भी पहले घट चुकी घटनाओं से सबक नहीं लेता। अगर वह इन बीती घटनाओं, बीते इतिहास से सबक ले, तो हमारा आनेवाला कल सुनहरा हो सकता है।-

"वैसे यह मत भूलो, कि
बीतती तारीखें हैं
तबारीखें नहीं,
तबारीखें-
तारीखें नहीं, घटनाएँ होती हैं।
या वो बदनसीब लोग होते हैं।"¹⁰

नरेश मेहता जी ने अपने काव्य में युद्धों का विरोध किया है। युद्ध इस शताब्दी के मानव की एक मुख्य समस्या है। प्राचीन युग में जिस प्रकार युद्धों में क्षति होती थी तब इन्सानियत का विनाश होता था। वैसे युद्धों की स्वीकृति में मानव मूल्यों के संरक्षण की भावना मिलती है। पर युद्ध स्वयं में मूल्य नहीं माना जा सकता। वह तो उपलब्धि का उपक्रम मात्र होता है। कवि ने युद्ध की आड़ में सामंतवादी अथवा साम्राज्यवादी प्रवृत्ति दासता अत्याचार के विरुद्ध न्याय अधिकार और स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार किया है। कवि कहते हैं कि-

"क्षमा करें महाराज
हम केवल घटना हैं
इतिहास नहीं
संभव हैं
हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दे।"¹¹

युद्ध का कारण अपमान भी है। प्रायः सभी युद्धों के मूल कारणों में अपमान का बोध प्रमुख है। रामचरितमानस में राम रावण का युद्ध अपमान से ही हुआ है। मानव के सभ्यता के अभाव में और सद मूल्यों के विघटित होने पर युद्ध की स्थिति बन जाती है। सत्ता की कुरता और निरंकुशता व्यक्ति तथा समाज के विकास को अवरुद्ध कर देती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कवि नरेश मेहता के काव्य में राजनीति के सभी पक्षों पर विचार मिलते हैं। जो आज के वर्तमान स्थिति की तरफ भी संकेत करते हैं। कवि ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर सदमूल्यों को ही महत्व दिया गया है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सभी उन श्रेष्ठ मूल्यों को आचरणीय माना है। जिनसे मनुष्य समाज और राष्ट्र की सत्ता और प्रतिष्ठा बनती है। उन्होंने झूठ, फरेब, छल, कपट, ठगी, चोरी, हत्या, युद्ध, संघर्ष इन सबको नकारा है। उन्होंने सत्य, सभ्यता, सहानुभूति, दया, करुणा, प्रेम,

भक्ति, उपकार आदि मूल्यों को महत्व दिया है। नरेश मेहता जी का काव्य इन्हीं सब मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का काव्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नरेश मेहता एक एकांत शिखर - प्रमोद त्रिवेदी-पृष्ठ 33,34
2. देखना एक दिन - नरेश मेहता-पृष्ठ 53
3. पिछले दिनों नंगे पाँवों - नरेश मेहता पृष्ठ 34
4. वही पृष्ठ 82
5. महाप्रस्थान - नरेश मेहता पृष्ठ 110
6. प्रवाद पर्व - नरेश मेहता पृष्ठ 68
7. महाप्रस्थान - नरेश मेहता पृष्ठ 112
8. प्रवाद पर्व - नरेश मेहता पृष्ठ 98
9. संशय की एक रात - नरेश मेहता पृष्ठ 74
10. पिछले दिनों नंगे पाँव - नरेश मेहता पृष्ठ 62
11. संशय की एक रात नरेश मेहता पृष्ठ 87



Peer Reviewed Research
and UGC Indexed Journal
(Journal No. 4550)

AJANTA

Goals

Lead by
example

Success

Vision

Volume - IX, Issue - II

April - June - 2020

Hindi Part-I

Impact Factor / Indexing

2019 - 6.399

www.sjifactor.com

Ajanta Prakashan

१०. संत साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

हिन्दी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी.

स्वरूप

महाराष्ट्र के मराठी संत नामदेव तथा हिन्दी के निर्गुणवादी संत कबीर के उदात्त और गरिमामय व्यक्तित्व ने तत्कालीन युग को प्रभावित किया था, मगर समय के अन्तराल के साथ उनकी महीमा बढ़ती गयी। आज साडेसात सौ बरसों के बाद भी उनकी वाणी उतनी ही प्रासंगिक, सार्थक और कर्मप्रेरित है जितनी पहले थी। बल्कि सही अर्थों में आज उनके वचन पूरे समाज को सही दिशा निर्देश देने में अधिक प्रेरणादायी सिद्ध हो सकते हैं। वर्तमान समय सामाजिक, राजनीतिक दृष्टी से जितना संकटपूर्ण है उतना धर्म, संप्रदाय और जाति के नाम पर आतंकवाद फैल रहा है। धर्मभेद, जातिभेद के कारण मानव-मानव के बीच भेद और घृणा की दीवारें बढ़ती जा रही हैं। इसी कारण मानव के मन में असुरक्षा की भावना बढ़ रही है। उससे बचने के लिए संतों की वाणी और उनकी कर्मचेतना अमोघ अस्त्र का कार्य कर सकती है। संतों के वाणी का धर्म सच्चा मानवतावाद है। जो मनुष्य को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। जिसमें ऐसी सच्चाई है जो सभी धर्मों के मूल में है, किन्तु वह सभी धर्मों के बाह्य आडंबर तथा पाखंडों से रहित है। उनकी कर्मचेतना का संदेश सभी प्रकार के ढोंग से दूर है। वह ऐसे सत्य पर आधारित जो हमारे सबके भीतर निहित हैं। उसका अनुसंधान हमारे लिए जरूरी है। आज मनुष्य विविध प्रलोभनों में फँसकर ढोंग के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है। मुँह में राम और बगल में छुरी रखनेवाले ढोंगी मानवों के लिए संतों का सत्यरूपी कर्मवचन निश्चित रूप से अँधेरे में प्रकाश की सही दिशा दिखाने के लिए सक्षम हैं। संत नामदेव और संत कबीर के काव्य की कर्मचेतना का दृष्टीकोन इतना सक्षम है कि, जिससे मनुष्य चिंता, हीनता, भय से उपर उठकर अपने अंदर आत्मविश्वास निर्माण करता है।

संत नामदेव की हिन्दी और मराठी भक्ति साहित्य में कर्मचेतना

संत नामदेव का जन्म तथा परिचय

महाराष्ट्र में नामदेव नाम के छ संतों के संदर्भ उपलब्ध होते हैं। इसलिए कभी-कभी एक की बातें दूसरे से जुड़ जाती हैं। पाठकों के मन में कभी-कभी इसी कारण भ्रम पैदा होता है। अधिकतर यह माना जाता है कि सर्वाधिक लोकप्रिय नामदेव वह थे जिन्होंने उत्तर भारत में कबीर के पहले भागवत धर्म का प्रचार किया था और हिन्दी में भी काव्य रचना की थी। संत नामदेवजी का जन्म संवत् 1327 में सातारा जिले के नरसी वमनी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेठ और माता का नाम गोनाबाई था। मराठी के प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर जी के यह समकालीन माने जाते हैं। यह जाति के सिंपी थे। संत कबीरजी ने इनकी भक्ति की महीमा का गान किया है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत विठोबा खेचर इनके गुरु थे। इन्होंने मराठी के अभंगों के अतिरिक्त हिन्दी में भी पदों की

रचना की है। इनकी सभी रचनाओं को डॉ. भगीरथ मिश्र जी ने संत नामदेव की हिन्दी पदावली नाम से प्रकाशित किया है। जिसमें 230 पद और 13 साखियाँ हैं।

संत नामदेव के काव्यद्वारा कर्मचेतना

संत नामदेव पहले सगुण थे। किन्तु कुछ समय के बाद निर्गुणवादी संप्रदाय में उन्हें रुची निर्माण हो गयी। वह उस ब्रम्ह साधना में लग गये जो अलख, निरंजन, निर्गुण, निराकारी और घट-घट व्यापी है। उनके अनुसार ईश्वर को मंदिर, मस्जिद, चर्च में खोजना व्यर्थ है। वे कहते हैं—

“हिन्दु पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।

नमे सोई सेविया, जहँ देहुरा न मसीत।”¹

नामदेव जी ने उसे राम, केशव, विठ्ठल, रहीम, करीम आदि अनेक नामों से पुकारा है। उनके मत से नाम भेद से रूप में अंतर नहीं आता। उन्होंने बाह्याचार, मूर्तिपूजा, विभिन्न देवी देवताओं की भक्ति की भी निंदा की है। राम उनके आराध्य हैं, जो घट-घट में विराजमान हैं।

बचपन से माँ पिताजी द्वारा सगुणवादी भक्ति की परंपरा थी। परंपरागत भक्ति भावना को अपनाते हुए बचपन से वह भक्तिरस में डूबे थे। सामान्य मनुष्य की तरह ईश्वरीय चमत्कार पर भरोसा रखकर उन्होंने पांडुरंग को अपना ईश्वर माना था। अन्य भक्तों की तरह विठ्ठल के नामस्मरण में इतनक व्यस्त हो गये कि उनका गृहस्थी जीवन के कर्तव्यों की तरफ ध्यान नहीं था। नामदेव की भक्ति का घर से विरोध होने लगा। लेकिन उन्हें भक्ति के अलावा किसी भी कर्म में रस नहीं था। विठ्ठल के सगुण रूप को उन्होंने वश में कर लिया है ऐसा अहंकार उन्हें हो गया था। उनके इस रूप को देखकर मुक्ताई उन्हें फटकारती हुई कहती है—

“अखंड जगाला देवाचा शेजार,

करे अहंकार नाही गेला?”²

इसका मतलब जिसके साथ हरदम ईश्वर रहता है उसके पास गर्व की भावना कैसे आ गयी? सच्चे ज्ञान के बिना भक्ति व्यर्थ है ऐसा उपदेश देती हैं। उन्हें सच्चे ज्ञान का दर्शन कराने के लिए संत गोरा कुंभार द्वारा उनकी परीक्षा ली जाती है और भक्ति मार्ग में अभी तक कच्चे है ऐसा कहा जाता है तब वह अपमानित हो जाते हैं। सच्चे ज्ञान की प्राप्ति की लालसा उत्पन्न हो जाती है। तब उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और वे कृतार्थ होकर कहते हैं—

“सद्गुरु नायकें पूर्ण कृपा केली।

निज वस्तु दाविली माझी मज।”³

गुरु के प्रति निष्ठाभाव, ज्ञान की प्राप्ति की लालसा और अहंकार का नाश इसके द्वारा आज भी सामान्य लोगों को भक्तिभावना की चेतावनी प्राप्त होती है इसलिए वह कहते हैं—

“सर्वकाळी परमात्मा आहे सर्व देशी।

भावना हे अहर्निशी दृढ धरी।”⁴

ईश्वर चराचर में व्याप्त हैं, उसकी प्राप्ति के लिए अच्छा कर्म ही महत्वपूर्ण हैं। ऐसी भक्ति में आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरिक्षण द्वारा चित्त की शुद्धि को महत्व दिया गया है। इस बात का साक्षात्कार नामदेवजी को हो जा रहा है। संत नामदेवजी जान चुके थे कि, गृहस्थाश्रम में रहकर कर्म करते हुए भक्ति के मार्ग पर चल सकता है। संसार भवसागर को पार करनेवाला मनुष्य ही सच्चा साधक है। निःस्वार्थ भाव से किया हुआ हर कर्म ईश्वर की भक्ति है। इसलिए वह कहते हैं—

“रांगनि रांगड सीवनि सिवड।

रामनाथ विन धरि अन जीवड।।

भगति करड करिके गुन गावड।

आठ पहर अपना खसम धिआवड।।”⁵

मतलब जिस मनुष्य का जीवन राममय हो गया है, वह दिन रात कर्म करते हुए नामस्मरण करता है, हर सांस लेते हुए और छोड़ते हुए राम नाम का जप करता है, उसी अवस्था को सहज समाधि की अवस्था कहते हैं। भक्ति के लिए किसी भी ढोंग की जरूरत नहीं। सच्ची भक्ति का मतलब बताते हुए वे कहते हैं—

“हरिनाम सतत घ्यावे,

त्या आधी मनास मुंडावे,

देहभाव सांडावा, वासना दंडावी,

आणि आत्ममय होवूनी रहावे।।”⁶

हर मनुष्य ने विकारों से रहित जीवन को अपनाकर प्रेम को महत्व देना होगा। उसके लिए चित्त शुद्ध रखकर कर्म के प्रति निष्ठा रखनी होगी। आधुनिक काल में मानव धर्मभेद, जातिभेद, वंशभेद के अनुसार ईश्वर भक्ति का ढोंग कर रहा है। अपने ढोंग को छिपाने के लिए चमत्कारों का आश्रय लिया जा रहा है। पाप का धन मूर्तियों पर चढ़ाकर पुण्य कमाने का ढोंग किया जा रहा है। ऐसे अवसर पर नामदेवजी के जीवन का परिवर्तन और भक्ति का मार्ग हर सामान्य मनुष्य के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हो सकेगा यह मेरा अपना विश्वास है।

कबीरदास के काव्य की कर्मचेतना

कबीरदास एक कवि, साधक और समाज सुधारक के रूप में संत काव्य परंपरा के श्रेष्ठ व्यक्तित्व संपन्न महापुरुष थे। इसलिए वह सभी लोगों के आदरणीय बने। जहाँ समकालीन संत महात्माओं ने उन्हें सम्मान दिया, उनके शिष्यों और अनुयायी ने उन्हें ईश्वर का अवतार तक घोषित किया। दूसरी तरफ वह उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण आंदोलन के केंद्र बिंदु बने। रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी के पथप्रदर्शक बने तथा अब भी उनकी उपादेयता और सार्थकता का गुणगान हो रहा है। उन्होंने जिस मानव धर्म का प्रचार किया, वह सभी प्रकार के मताग्रह तथा औपचारिक धार्मिक मान्यताओं से रहित है। वह ऐसे 'सत्य' पर आधारित है जो किसी प्रकार की वेशभूषा, कर्मकांड और बाह्याचार में नहीं पाया जाता वह मानव की एकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका उपास्य मंदिर, मस्जिद तक सीमित नहीं है। वह सर्वव्यापी तथा घट-घट व्यापी है। उनकी भक्ति किसी धर्मग्रंथ पर आधारित नहीं है। किसी धर्माचार्य के उपदेश की अनुकृति नहीं है। वह आत्मा से प्रेरित है। इसलिए उसका प्रभाव अक्षुण्ण है।

वस्तुतः निर्गुणमार्गी संत काव्य सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण की उपज हैं। जिसमें पंडित, पुरोहित का वर्चस्व दूटता है और कविता में सामान्य लोगों के लिए कर्मचेतना दी जाती है। कबीरदास इस नूतन सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति के अग्रदूत थे। वह स्वभाव से संत थे, किन्तु कर्म से साधक और सुधारक थे। कर्म चेतना द्वारा समाज का कल्याण उनका लक्ष्य था। दया, अहिंसा, प्रेम, सत्य, परोपकार और लोककल्याण संतों की विचारधारा के मूलमंत्र थे। यही उनका धर्म है। सत्य ही उनका ईश्वर है। इसलिए कबीर कहते हैं—

“पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय।

एकै आखर पीव का पढ़ै सु पंडित होई।।”7

इस पद में कबीर ने प्रेममंत्र का जीवन में महत्व प्रतिपादित किया है। रामनाम का महत्व समझना यही जीवन का सच्चा ज्ञान है। वह आगे चलकर कहते हैं कि,

कहै कबीर सुनहु रे संतों, धन, माया कछू संगनि गया।

आई तलब गोपाल राइ की, धरती रैन गया।।”8

यहाँ अंधे मनुष्यों को बुरे कर्मों का फल किस तरह भुगतना पड़ता है यह बताकर उसे चेतावनी दी गयी है। जीवन में बुराई के रास्ते से कमाया हुआ धन मृत्यु के पश्चात् साथ नहीं देता। छः विकारों के मायाजाल में फँसकर ‘सत्य’रूपी ईश्वर को भूल जाना अच्छी बात नहीं। संसार की सुंदरता कर्म और सत्संग में ही होती है। समाज को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि, हे मन तुम बुद्धीवान हो तथा ज्ञान के भंडार हो। तुम स्वयं अपने आप विचार करो कि इन जीवों में कौन चतुर है और कौन पागल है? कौन ईश्वराभिमुख है? कौन से कर्म दुःख के हेतु है और किन कर्मों से दुःख की निवृत्ति होती है? किसे हित माने? कौन वस्तु सार है? कौन निस्सार है? कौन प्रेम शून्य है और कौन प्रेम करनेवाला है? क्या सत्य और क्या मिथ्या है? जीवन की कौनसी अनुभूती कड़वी है और कौनसी अनुभूती मधुर है? कौन वस्तुतः दुःख से जल रहा है और कौन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा है? कौन से कर्म मुक्ति के हेतु बनते हैं और किस कर्मों के करने से गले में फंदा पड़ता है? जीवन के मूल तत्व एवं प्रयोजन के इन प्रश्नों पर तुम स्वयं विचार करके मुझे बताओ। इस तरह कबीरदास हर मनुष्य को विचार करने के लिए प्रवृत्त करते हैं। कर्म की सावधानता यही जीवन की सच्चाई मानी गयी है। कबीरजी कहते हैं—

“एक पल जीवन की आस नाहि, जम निहारे सासा।

बाजीगर संसारा कबीरा जानि ढारौ पासा।।”9

इसका मतलब मनुष्य ने गृहस्थी जीवन को अपनाकर ईश्वर की प्राप्ति की लालसा कभी नहीं रखनी नहीं चाहिए। यह जीवन क्षणभंगुर है, यह जीवन बाजीगर की तरह जीतने के लिए सत्कर्मों की आवश्यकता है। भगवान उन्हें का उद्धार करते हैं जो स्वयं अपने उद्धार में प्रयत्नशील रहते हैं। वे कहते हैं—

“छाडि कपट भजौ राम राई,

कहै कबीर तिहु लोक बडाई।।”10

इस तरह संत कबीर सच्चे कर्मभाव को महत्व देते हैं। कोई भी कर्म करते समय मन में कपट भाव धारण किया तो वह कर्म बुरा होगा। यही कर्मभक्ति आधुनिक काल में मनुष्य को चेतावनी देती है।

GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
UGC Approved Care Listed Journal

ISSN 2348-2397

Special Issue

5

शरध सारिता

An International Multidisciplinary Quarterly
Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal

Vol. 7

• Issue 25

• January to March 2020

Editor in Chief

Dr. Vinay Kumar Sharma

D. Litt. - Gold Medalist



sanchar
Educational & Research Foundation

समकालीन काव्य में युग चेतना

□ प्रा. डॉ. विद्या शशी शेखर शिंदे*

शोध सारांश

मूल्य संक्रमण एवं मूल्य विघटन महानगरीय जीवन के हर पहलू में देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार के समानान्तर मूल्य विघटन को महसूस किया जा सकता है। संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गया है। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी जिससे परिवार में संघर्ष बढ़ता ही चला गया। ऐसी संघर्षमय स्थिति में माना पिता को समझौता करना पड़ रहा है या तो उसे परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग दौड़ करता है। अर्थ महानगरीय मानव की कमजोरी है। उनके लालच में लोग धिनौने से धिनौने कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अर्थ को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है। तो पदोन्ती लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालिन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है जो आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के प्रति हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के कारण हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आती है। भारतीय संस्कृति की सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है।

Keywords: पश्चिमी सभ्यता, अंधानुकरण, महानगरीय जीवन, मूल्य संक्रमण, मूल्य विघटन

हमारे भारत देश को गाँवों का देश कहा जाता है। फिर भी नगरीकरण और औद्योगीकरण की तीव्र गति के कारण देश में कस्बे नगर और नगर महानगर बनते जा रहे हैं। ऐसे कस्बाई जिंदगी जीने वाला व्यक्ति महानगर में आकर अपने आपको नगरी संस्कृति में 'एडजस्ट' नहीं कर पाता। महानगर का जीवन उस गाँव के अपनेपन तथा स्नेहशक्ति जीवन का अनुभव न होकर उदासी और शुष्कता का जीवन लगता है। भारत में ग्रामीण जनता की गरीबी, अभाव, निर्धनता, बेकारी ने उन्हें अपनी भूमी से उखड़ने के लिए विवश किया और उसे यहाँ नगरों की ओर जाने के लिए बाध्य किया। परंतु गाँव से आये व्यक्ति के लिए महानगर में समायोजन का प्रयास काफी कष्टदायक तथा तनावपूर्ण अनुभव बन जाता है। शहरों में रहने वाले लोगों को सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य खत्म हो रहे हैं। उसका वर्णन समकालीन कविता में किया गया है। उसी की ओर ध्यान खींचने का प्रयास इस शोध कार्य द्वारा किया गया है।

विषय क्षेत्र :

समकालीन कवि उदय प्रकाश, अरुण, कमल, कुमार कृष्ण, राजेश जोशी, कुमार अम्बुज, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डनरंतल बोधिसत्व, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अशोक वाजपेयी, निर्मला पुतुन, किरण अग्रवाल, प्रज्ञा मजूमवार तथा दुष्यंत कुमार जी की कविताओं में युग चेतना का वर्णन समाज की वास्तविक स्थिति

को दर्शाता है उसका वर्णन किया गया है।

विशय उपलब्धि -

समकालीन काव्य विद्वानों ने 1960 के उपरांत माना है। लेकिन मैंने तत्कालीन कवियों की समकालीन कविताओं के भीतर की वास्तविकता को पहचानने की कोशिश की है। आज के कवियों ने अपने समय को अत्यंत निकटता से, बारीकी से देखा है और उसे अनुभूत कर उसे वाणी देने का सफल प्रयास किया है। वहाँ हमें आज के अराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत कराती है जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। इस कविता के माध्यम से आधुनिक समाज को चेतना देने का प्रयास कवियों ने किया है उसे ढूँढ़कर पाठकों के सामने लाना इस शोध निबंध का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

1) समकालीन कविता में मानव मूल्यों की तलाश -

आज हमारे सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्य खत्म हो रहे हैं जिससे कारण घर संस्कृति बह गयी है। घर ईट-पत्थर से नहीं बनता बल्कि मानव मूल्यों के कारण बनता है। आज इन्सान इन्सान से दूर होता जा रहा है। संचार के इस युग में तथ्य आधुनिकता की स्पर्धा के इस युग में मूल्यवान वस्तुएं हमसे छूटती जा रही हैं। संचार के इस युग में भावनाओं का संचार नष्ट हो रहा है। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्यों के हास के कारण आज अहंकार तथा अकेलापन बढ़ रहा है, मानवीय संवेदना तथा

संयुक्त परिवार खत्म हो रहे। इसलिए कवि अरुण कमल जी कहते हैं।

‘दुनिया में इतना दुःख है इतना ज्वर

सुख के लिए चाहिए बस दो रोटी और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।’

कवि के अनुसार आज हम जहां पहुंच गये हैं, वहां से हमें लौटना पड़ेगा अन्यथा जीवन में दुःख और उदासी के सिवाय कुछ नहीं रह जाएगा। इसी कारण शायद आज कवि उस घर की तलाश के लिए बाध्य हो गया जिसमें मूल्यों की खोज करनी न पड़े। आज धन की लालसा ढाढ़ रही है उसके लिए रिश्तों को भी तोड़ा जा रहा है। धन का अहंकार इतना बढ़ गया है कि आदमी हवा में सैर करने लगा है। उसके पांव धरती से छूटते नजर आ रहे हैं। सहानुभूती, प्यार, दया शांति ये चीजे खत्म होती जा रही हैं। जिसके कारण अकेलापन महसूस होने लगा है। अस्तित्व को इस लड़ाई में स्त्री पुरुष रिश्ते आपसी प्रेम संबंध बिगड़ते हुए नजर आ रहे हैं। प्यार के नष्ट होने के कारण और अहंकार के बढ़ने का नया नतीजा होता है उसे उदय प्रकाश जी कहते हैं—

‘मैं तुम्हारे बिना रह सकता था पृथ्वी पर अपनी उम्र भर
यह मुझे सिद्ध करना था चुपचाप
यह मैंने सिद्ध किया।

तुम भी रह सकती थी अपनी उम्र भर इसी पृथ्वी पर मेरे
बाँर

तुमने भी सिद्ध किया।’²

इस तरह समाज में मूल्यों का हास होने के कारण आज आपसी संबंधों का ताना बाना भी टूटता नजर आ रहा है, तालमेल खत्म हो रहा है जिससे समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है। यांत्रिक युग में लोग यंत्र की तरह दिन रात काम में इतने व्यस्त हो गये हैं कि उन्हें एक दुसरे से दो शब्द कहने की फुर्सत नहीं है। यही कारण है आज अजनबीपन बढ़ने लगा है। कवि राज के मनुष्यों का ध्यान बार-बार मूल्यों की तरफ खींचने का यास कर रहे हैं।

रिश्तों के विघटन के कारण अकेलापन का आना ज़ाभाविक ही है। संबंधों के विघटन से उपजे अकेलेपन को कवि बखूबी प्रस्तुत किया है। आज व्यक्ति समाज में इतने व्यस्त है। गली मोहल्ले में भी एक दूसरे को नहीं पहचानता। समय की गति ऐसी है यही कहा जा सकता है।

‘तों का विघटन इन पक्तियों में देखा जा सकता है—

‘माँ धीरे-धीरे चली गयी है इतनी दूर
तक उसके सबसे स्मरणीय और चमकदार रूप के लिए
लौटना होता है कई साल पहले के वक्त में
मैं चाहूँ तो भी नहीं रोक सकता माँ को जाने से
दूर दूर तक नहीं बची रह गयी है मुझमें अबोधन।
धीरे धीरे मैं खुद चला आया हूँ माँ से इतनी दूर

कि मेरे घर में अन. मा एक अतिथि है।’³

कुमार कृष्ण जी की अनेक कविताओं में बचपन में बिताए स्नेह के मधुर अवसर की पहचान मिलती है। वह दिन याद करके वह भावविभोर होते हुए कहते हैं—

‘बहुत छोटा था

जानता था मैं—

दादा के कमल में है कोई जादू
कह झट से झूला देता है बच्चों को

बहुत बार मैंने

सोती हुई वहन को

उसी कमल में सोता देखा था।’⁴

मतलब है की आत्मीयता मनुष्य को अपनापन देती है। वह स्मृतियों के आधार पर भी जी सकता है। मगर आज अकेलापन इसलिए महसूस हो रहा है क्योंकि कह सार चीजे छूटती नजर आ रही है। जिंदगी में हमारे आसपास सुविधाओं का ढेर लगा हुआ है मगर प्रेम, सहानुभूती, आत्मीयता जैसी चीजे ग़ि़खरती हुई नजर आ रही है। यह व्यथित करने वाला चिंतन है। आज वह क्षमता होकर अकेले भटकने को मजबूर हो गया है। वह सिर्फ अपने लोगों का प्यार चाहता है मगर उसे कुछ नहीं मिल रहा है। समकालीन कवियों की कविता में चेतावनी दी गयी है की आज जीवन में प्यार की प्रमुख भूमिका है। इसमें वह ताकत मौजूद है जो व्यक्ति को व्यक्ति से, परिवार और समाज से जोड़ती है। प्यार की इस जीवनदायीनी शक्ती को समझने की जरूरत है। प्रेम के अभाव के कारण मनुष्य-मनुष्य से दूर होकर अकेलापन महसूस कर रहा है।

समकालीन हिंदी गजलों में वास्तविकता का चित्रण—

आज भारत की सामाजिक हालत बिगड़ी हुई नजर आती है। देश में बेकरी, गरीबी का, महंगाई, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी, धर्म के नाम पर दंगे, पूजावाद, सर्वहारा वर्ग का शोषण उसकी समस्याएं आम आदमी की पीड़ा आदी कई तरह की समस्याएं देखने के लिए मिलती हैं। आज की सामाजिक व्यथा का कारण समाज ही है। वर्तमान समाज व्यवस्था के मापदंड कुछ बदले हुए नजर आते हैं। वे पतन की ओर जा रहे हैं। समाज फिर भी विवश है। वह इन आपत्तियों का सामना करना नहीं चाहता बल्की जैसा है वैसे ही जीवन जीना चाहता है। इसी को दृष्टि में रखकर दुष्यंत जी ने सहनशीलता की परिसीमा का दिखाते हुए कहा है—

‘न हो कमीज तो पांवों से पेट ढक लेंगे

ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।’⁵

आज सामाजिक व्यवस्था ही भ्रष्ट होती जा रही है। सड़कों पर भ्रष्टाचार का कीचड़ फैला हुआ है और हम सभी उसमें सने हुए हैं। दुष्यंत जी ने भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट की है। वे कहते हैं—

“इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछा है
हर किसी का पांव घुटनों तक सना है।”6

1 में नैतिकता का पतन व्यक्ति के अजनबीपन पर दुष्प्रति-
ग करते हुए लिखा है -

“इस शहर में जो कोई बारात हो या वारदात
हर किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ।”7

समाज में यह प्रवृत्ति बढ़ती हुई दिखायी दे रही है। शहरों
में दोगम या दोहरे संबंध होते थे अन वह भी नहीं रहे। यहां एक
पशु के रूप में गरजवंत काम करता रहता है। वहीं इन्सान घर में
अपने आप को इस तरह कैद करता है की उसे किसी अन्य की
आवश्यकता नहीं। चाहे वह किसी की बारात हो या कोई उसे
कोई सरोकार ही नहीं रहता। यहां दुष्प्रतिग ने शहरी मूल्य
दिन-न-दिन बदलते हुए दिखाये हैं। परिवर्तन ही संसार का
नियम है। समाज में बहुत सी बातें हैं जो पुरानी पड़ चुकी हैं। हमें
पुरानी बातों को हटाना चाहिए और नयी नयी बातों को स्वागत
करना चाहिए! इसी बदलाव से हमारी उन्नति हो सकती है
अन्यथा नहीं। इसी वास्तविकता को दुष्प्रतिग ने अपनी गजल के
माध्यम से व्यक्त किया है-

“पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी
लपट आने लगी है अब हवाओं में भी
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी
यहां मासूम सपने जी नहीं पाते

इन्हें कुमकुम लगाकर फेंक दो तुम भी।”8

समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री विमर्श

समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री विमर्श संबंधी कविताओं
को पढ़ने पर ज्ञात होता है। कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो रहा
है और वहां अत्याचार अन्याय को चुपचाप कैसे सह रही है। जुल्म
के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत उसमें नहीं दिखती जिसकी
गजल से शोषण तंत्र मजबूत होता जा रहा है। समकालीन कवि ने
स्त्री पर होते रहे दमन को अपनी आँखों से देखते हुए स्पष्ट किया
है की अभी वह बद से बदतर जिंदगी जी रही है और निरंतर
उपेक्षा की शिकार हो रही है। उसकी दयनीय स्थिति देखिए की
पहले वह लोगों के घरों में जूटे बर्तन माँजती थी लेकिन इससे
गुजारा न होने पर वह अब ठेकेदार के पास काम करती है -

“वह तोड़ती है पत्थर
ढोती है सीमेंट की बोरीयां
फर्श बनाती है
ढलाई करती है छत की
और वह सब कुछ
जो ठेकेदार कहता है।”9

अंतिम दो पंक्तियों से जाहिर है कि वह मजबूरी में यह सब
कुछ चाहे वह उचित हो या अनुचित, नैतिक अनैतिक सबकुछ

करने की तैयार होती है। उनके बच्चे आवारा कुत्तों से गलियों से
घूमते हैं और बच्चियों की तो दशा दर्दभरी है। कवि कहते हैं कि -

मुट्ठी भर भुने चने या मूंगफली देकर
कोई भी उसकी बच्चियों को फुसला ले जाता है
वे नहीं जानती ‘बलात्कार’ शब्द
वे सुबक सुबककर रोती हैं बस
और अपनी नन्ही नन्ही मैली हथेलियों से
अपने धूल से सने आंसू पोछती जाती है।”10

वह तो आज अपने घर में भी सुरक्षित नहीं दिखाई देती।
भाई बहन का पवित्र रिश्ता भी आज सिर्फ नाम का रह गया है।
अस तरह आज की स्त्री उपेक्षित, लाचार शोषित दिखाई देती है।
महानगर में कामकाजी लड़की किस तरह से तनाव और दानवों के
बीच जी रही है उसे ज्ञानेन्द्रपती ने अपनी कविता पुस्तक
‘भितसार’ में बनानी बैनर्जी कविता में बखूबी प्रस्तुत किया है।
ऑफिस में काम करने वाली मिस बैनर्जी नकली हंसी हंसते थक
गयी है। जीवन के जंगले में वास्तविक हंसी वह भूल गयी है। इन,
बस, ट्राम में सफर करते समय वह इज्जत लुटने के डर से
भयभीत रहती है। इस डर के कारण वह रात को अच्छी तरह सो
भी नहीं सकती। उसके परिवार के सदस्य इसके बारे में कुछ नहीं
जानते विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविता पुस्तक ‘शब्द और
शताब्दी की ही है कविताएं ‘स्त्री की तिर्थयात्रा’ और ‘वह लड़की’
में भी औरतो की जिंदगी किया है की कटू वास्तविकता की
अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। स्त्री सिर्फ एक दुसरे सेविका है
और उसके प्रति समाज का नजरिया उत्पीड़नकारी है। इसमें कवि
ने एक स्त्री की दुनिया को बखूबी पहचानते हुए उसके सुबह
बिस्तर से उठने से लेकर शाम को बिस्तर पर जाने तक की क्रिया
का वर्णन किया है। वह घर के काम से लेकर बाहर सबके लिए
सेविका के रूप में हाजिर है परंतु उसके लिए कोई सहानुभूती तक
व्यक्त नहीं कर रहा है। उसके लिए किसी के पास कोई वक्त नहीं
है। वह अपने को हर स्थिति में एडजस्ट कर लेती है। कम सामान
में गुजारा कर लेती है। कवि कहते हैं की -

‘दोपहर भोजन के आखिर दौर में
आ गये गए मेहमान
दाल में पानी मिलाकर
किया उसने अतिथी सत्कार
और खुद बैठी चटनी के साथ
बची हुई रोटी लेकर।”11

उसका जीवन समर्पित है घर तथा कार्यालय के स
सदस्यों के लिए लेकिन उसके लिए किसी के पास प्रेम से भरे
शब्द भी नहीं है। वह कोल्हू के बैल की तरह काम में लगी हुई
आज दुनिया में बड़े से बड़े बदलाव आ चुके हैं। पर स्त्री
स्थिति में आया बदलाव आटे में नमक के समान है। वह परंपरा
सांचे में ढली हुई उस स्थिति, मानसिकता में जी रही है, पुरु

मशीन बनकर रह गयी है। और चुपचाप अन्याय को सह रही है। लेकिन कवि कहते हैं कि आज की स्त्री चुप है इसका मतलब वह गूंगी नहीं है। यह सही है कि तुम्हारे खिलाफ अकेले लड़ने में अनेक खतरे मौजूद हैं। परंतु मैं उनसे नहीं घबराती। निडरता के साथ बुलंद आवाज में पुरुष का ललकारकर वह कहती है।—

“तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गालियों से गुजरती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसे
ताकि ठीक समय पर
ठीक तरह से कर सकूँ हमला
और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तूम समझते हो।”¹²

ऐसा होने पर सच में उसकी अपने वजूद कि तलाश पूरी हो जाएगी। और उसे इस तरह भटकना नहीं पड़ेगा यह चेतावनी कवि दे रहा है।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध निबंध द्वारा महानगरों कि नयी पीढ़ी ने पुराने मूल्यों को तोड़कर नये मूल्य की कोशिश की है। मूल्य संक्रमण एव मूल्य विघटन महानगरीय जीवन के हर पहलू में देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार के समानान्तर मूल्य विघटन को महसूस किया जा सकता है। संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गया है। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी जिससे परिवार में संघर्ष बढ़ता ही चला गया। ऐसी संघर्षमय स्थिती में माना पिता को समझौता करना पड़ रहा है या तो उसे परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग दौड़ करता है। अर्य महानगरीय मानव की कमजोरी है।

अर्य के लालच में लोग धिनौने से धिनौने कार्य करने को तैयार जाते हैं। अर्य को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है। पदोन्नती के लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालिन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आती है। भारतीय संस्कृति सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है। मेरे इस शोध निबंध की प्रासंगिकता सार्थकता इसमें ही निहित है।

सन्दर्भ :—

- | | |
|-----------------------------|----------------------------|
| 1. पुतली में संसार | — अरुण कमल पृष्ठ 5 |
| 2. रात में हारमोनियम | — उदय प्रकाश पृष्ठ 1 |
| 3. अंतिम | — कुमार अम्बुज पृष्ठ |
| 4. वही | — पृष्ठ 76 |
| 5. सायें में धूप | — दुष्यंतकुमार त्यागी 1 |
| 6. वही | — पृष्ठ 27 |
| 7. वही | — पृष्ठ 21 |
| 8. यह भी उर्मिला है | — किरण अग्रवाल पृष्ठ 154 |
| 9. वही | — पृष्ठ 154 |
| 10. शब्द और शताब्दी | — विश्वनाथ प्रसाद पृष्ठ 21 |
| 11. नगण्डे की तरह नजते शब्द | — निर्मला पुतुल पृष्ठ |
| 12. वही | — पृष्ठ 12 |





Vidyawardhini Sabha's
Arts, Commerce and Science College,
Dhule (Maharashtra)

Department of Political Science

Organising

ONE DAY MULTIDISCIPLINARY NATIONAL WEBINAR ON

**CHALLENGES AND SIGNIFICANCE OF HUMAN RIGHTS
IN PRESENT SITUATIONS**

Certificate

This is to certify that डॉ. विद्या शशीशेखर शिंदे, असोसिएट प्रोफसर, हिंदी, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र I has participated / presented research paper entitled "मानव अधिकार और कोविड - १९" in the one day Multidisciplinary National Webinar on "CHALLENGES AND SIGNIFICANCE OF HUMAN RIGHTS IN PRESENT SITUATIONS" organised by Department of Political Science, Vidyawardhini Sabha's Arts, Commerce and Science College, Dhule (Maharashtra) on 27 July 2020.

His/her paper has been published in UGC Referred Journal No.- 40776 - Ajanta - 2277 - 5730 with Impact Factor - 6.399

Convener

Dr. Santosh S. Khatri
Dept. of Political Science

Chief Organiser

Dr. Shubhada G. Thakare
Principal,
Head of Dept. of Political Science

CO-ORDINATORS

Dr. V. M. Bhujade

Dr. P. R. Pawar

Prof. R. R. Gavit

Dr. S. C. Amrutkar

Dr. S. G. Joshi

१. मानव अधिकार और कोविड-१९

डॉ. विद्या शशीशेखर शिंदे

असोसिएट प्रोफसर, हिंदी, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र।

मानवअधिकार हर व्यक्ति का नैसर्गिक अधिकार या प्राकृतिक अधिकार हैं। इसके दायरे में जीवन, आजादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार आता है। इसके अलावा गरिमायुक्त जीवन जीने का अधिकार, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक अधिकार भी इसमें शामिल हैं। देश के संविधान में उल्लेखित अधिकार देखना बहुत जरूरी है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद 1943 में 48 देशों के समूह ने समूची मानव-जाति के मुलभूत अधिकारों की व्याख्या करते हुए एक चार्टर पर हस्ताक्षर किये थे। इसमें माना गया था कि व्यक्ति के मानवअधिकारों की हर किमत पर रक्षा की जानी चाहिए। भारत ने भी इस पर सहमती जताते हुए संयुक्त राष्ट्र के इस चार्टर पर हस्ताक्षर किये। हालाँकि देश में मानवअधिकारों से जुड़ी एक स्वतंत्र संस्था बनाने में 45 बरस लग गये और तब कहीं जाकर 1993 में राष्ट्रीय मानवअधिकार आयोग अस्तित्व में आया जो समय समय पर मानवअधिकारों के हनन के संदर्भ में केंद्र तथा राज्यों को अपनी अनुशंसाएँ है।

राष्ट्रीय मानवअधिकार आयोग

भारत ने मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के तहत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन और राज्य मानवाधिकार आयोगों के गठन की व्यवस्था करके मानवाधिकारों के उल्लंघन से निपटने हेतु एक मंच का निर्माण किया है।

भारत में मानवाधिकारों की रक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग देश की सर्वोच्च संस्था के साथ मानवाधिकारों का लोकपाल भी है। उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इसके अध्यक्ष होते हैं। यह राष्ट्रीय मानवाधिकारों के वैश्विक गठबंधन का हिस्सा है। साथ ही वह राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के एशिया पसिफिक फोरम का संस्थापक सदस्य भी है। एन.एच.आर.सी. को मानवाधिकारों के संरक्षण तथा संवर्धन का अधिकार प्राप्त है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 12, ज में यह परिकल्पना भी की गयी है कि एन.एच.आर.सी. समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानवाधिकार साक्षरता का प्रसार करेगा और प्रकाशनों, मीडिया, सेमिनार तथा अन्य उपलब्ध साधनों के जरिए इन अधिकारों का संरक्षण करने के लिए जागरुकता प्रदान करेगा।

भारतीय नागरिकों के मूल अधिकार

1. समता या समानता का अधिकार — अनुच्छेद 14 से 18 तक
2. स्वतंत्रता का अधिकार — अनुच्छेद 19 से 22 तक
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार — अनुच्छेद 23 से 24 तक
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार — अनुच्छेद 25 से 28 तक

5. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार —अनुच्छेद 29 से 30 तक

6. संवैधानिक अधिकार —अनुच्छेद 32

नागरिकों के मौलिक कर्तव्य

1976 में संस्कार द्वारा गठित स्वर्णसिंह समिति की शिफारिशों पर 42 वे संशोधन द्वारा संविधान में कर्तव्य जोड़े गये थे। मूल रूप से दस मौलिक कर्तव्यों की संख्या 2002 में 86 वे संशोधन द्वारा 11 तक बढ़ाई गयी।

1. प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को संजोए रखे और उनका पालन करें।
3. देश की अखंडता, प्रभुता और एकता की रक्षा करें।
4. देश की रक्षा करना।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें।
6. ऋमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका निर्माण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्धन करें।
8. वैज्ञानिक दृष्टीकोण और ज्ञानार्जन की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें।
10. व्यक्तिगत एवं सामुहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें।
11. माता-पिता या संरक्षक द्वारा 6 से 14 बरस के बच्चों हेतु प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना।

नागरिक इन कर्तव्यों का पालन करने के लिए संविधान द्वारा नैतिक रूप से बाध्य हैं।

मानव द्वारा मानव के दर्द को पहचानने और महसूस करने के लिए किसी खास दिन की जरूरत नहीं होती हैं। मगर हमारे मन में संवेदनशीलता का होना जरूरी है। सामान्य रूप से मानवाधिकारों को देखा जाय तो मानव जीवन में भोजन पाने का अधिकार, बाल शोषण, उत्पीड़न पर अंकुश, महिलाओं के लिए घरेलु हिंसा से सुरक्षा, उसके शारीरिक शोषण पर अंकुश, प्रवास का अधिकार, धार्मिक हिंसा से रक्षा आदि को लेकर बहुत सारे कानून बनाए गये हैं जिन्हें मानवाधिकार की श्रेणी में रखा गया है।

कोविड -19 और मानवाधिकार

हमारे देश के साथ-साथ पूरे विश्व में कोविड 19 नामक जानलेवा बीमारी का फैलाव हो रहा है। आये दिन मीडिया पर कोविड 19 से संक्रमित बीमारीयों के ऑकड़े दिखाई दे रहे हैं। पंतप्रधान नरेंद्र मोदीजी ने 17 मार्च 2020 से लॉकडाउन जारी किया है और वह आजतक शुरु है। लेकिन क्या हमारी राजनीतिक संस्थाएँ लोगों की सुरक्षा चाहती है? इस पर बड़ा सा प्रश्नचिह्न लगा हुआ दिखाई देता है।

महाराष्ट्र के औरंगाबाद में मालगाजी ने पटरी पर सोए मजदूरों को कुचल डाला। उसमें 14 लोगों की मौत हो गयी और दो घायल हो गये। ये लोग प्रवासी मजदूर लॉकडाउन के बाद रेल की पटरियों के साथ-साथ चलते हुए मध्यप्रदेश में स्थित अपने गाँव पैदल लौट रहे थे। रास्ते में रात होने पर 20 लोगों का एक समुह पटरी पर सो

गया। सुबह साडे पाँच बजे एक मालगाडी ने उन्हें कुचल डाला। अगर लॉकडाउन जारी करते हुए इन बातों का खयाल रखा होता तो यह नौबत नहीं आती। इस पर गंभीर विचार करना जरूरी है।

इन जैसे कई प्रवासी मजदूर काम बंद हो जाने और अपने पास के पैसे समाप्त होने के बाद तथा अपने सिर पर छत नहीं होने के कारण सैकड़ों और हजारों किलोमीटर दूर स्थित अपने अपने घरों के लिए पैदल या साइकिल या किसी भी तरह निकल पड़े। इस मुश्किल समय पर उन्हें अपनी घर की याद आना स्वाभाविक था। अपनी जान की पर्वा न करते हुए वह घर जाने के लिए निकले जरूर मगर वह घर पहुँच नहीं पाये। कई लोगों ने भूख से तड़पकर या कमजोरी के कारण या हृदय पर दबाव पड़ने के कारण रास्ते में ही दम तोड़ दिया। कुछ मजदूरों ने अपनी बचत से साइकिल खरीदकर तो कुछ लोग पीठ और सिर पर सामान लेकर बच्चों को कंधे पर लेकर सुनसान पड़ी सड़क पर पैदल ही निकल पड़े। रास्ते में अनेक लोगों की मृत्यु हो गयी। क्या उन्हें जीने का अधिकार नहीं था? उत्तर प्रदेश के शाहजहांपूर के एक अस्पताल में 32 वर्षीय आदमी की मृत्यु हो गयी। वह 28 अप्रैल 2020 को अन्य मजदूरों के साथ दिल्ली से बिहार के खगडीयों तक करीब 1200 कि.मी. के सफर साइकिल से तय की थी। इसके एक दिन पहले 50 वर्षीय आदमी की मृत्यु रास्ते में ही हो गयी। वह उत्तर प्रदेश के महाराजगंज में स्थित अपने घर जाने के लिए महाराष्ट्र के भिवंडी से 390 कि.मी. साइकिल चला कर सेंधवा तक पहुँच पाया। उसकी घर पहुँचने की ईच्छा अधूरी रह गयी। 35 वर्षीय आदमी उत्तर प्रदेश के अपने घर जाने के लिए मुंबई से 1500 कि.मी. पैदल अपने गांव तक पहुँचा लेकिन घर नहीं जा सका उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसे अनेक लोग लॉकडाउन से पीड़ित होकर मौत को अपना चुके हैं। इनके जीने का अधिकार किसने छिना? यह प्रश्न हमारे मन में उभरते रहते हैं। इस समय हमारी मानवतावादी संविधान की धारा, कानून और अधिकार सिर्फ कागज पर ही शोभायमान बने रहे। हर मनुष्य को अपने हक और कर्तव्यों के प्रति सजग रहने की जरूरत महसूस हो रही है। यह हमें जरूर समझाना होगा कि ये वास्तविक आंकड़े नहीं हो सकते हैं क्योंकि ऐसी कई मौतें राष्ट्रीय मीडिया की खबरें नहीं बन सकी लेकिन स्थानीय मीडिया की खबरों में जरूर आयी होगी।

कोविड 19 की लड़ाई में मानवाधिकार

26 मार्च 2020 को संयुक्त राष्ट्र के अनेक मानवाधिकार विशेषज्ञों ने जोर देकर कहा है कि, सार्वजनिक स्वास्थ्य और आपदा उपाय किये जाने के बीच वैश्विक महामारी कोविड 19 का मुकाबला करने की जिम्मेदारी में हर व्यक्ति के बुनियादी अधिकारों का सम्मान किया जाना बहुत जरूरी है। इस अधिकार को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी हर देश के सरकारों की है। इस मानवाधिकार तज्ञों का कहना है कि संसाधनों या बिमा योजनाओं की किल्लत को बहाना बनाकर मरीजों के किसी भी समुह के खिलाफ किसी भी तरह से और कभी भेदभाव नहीं किया जा सकता। स्वास्थ्य सुनिश्चित करने का अधिकार सभी को हासिल है।

कुछ छात्र कार्यकर्ता जो नागरिकता अधिनियम के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में शामिल थे। उन्हें 24 अप्रैल को गिरफ्तार किया गया। उनके उपर प्रदर्शनी में उनकी कथित भूमिका के संबंध में, दंगा करने और गैर कानूनी रूप से सम्मिलित होने के आरोप में गिरफ्तार किया था। लेकिन यह धर्म के आधार पर भेदभाव प्रदान करता है। इसके अलावा अन्य लोग भी इसी स्थिति का सामना कर रहे हैं। कोविड 19 महामारी के दौरान यह और भी अधिक चिंताजनक है। 25 मार्च 2020 को संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार उच्चायुक्त ने कोविड 19 महामारी के चलते सभी राज्यों से

राजनैतिक बंधन और अपने आलोचनात्मक, असहमतीपूर्ण विचारों के लिए हिरासत में लिए व्यक्तियों को रिहा करने का आग्रह किया। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, और कर्नाटक सहित पूरे भारत में कम से कम 200 जेल कैदियों और जेल कर्मचारियों को कोविड 19 संक्रमण होने की पुष्टि होने के बावजूद, शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों सहित, कार्यकर्ताओं और मानवाधिकार रक्षकों को हिरासत में रखने के लिए कठोर कानूनों के दुरुपयोग के जरिए प्रशासन उन्हें सिर्फ प्रताड़ित नहीं कर रहा है बल्कि अनावश्यक रूप में उनके जीवन को गंभीर जोखिम में डाल रहा है।

महामारी के खिलाफ लड़ाई में सभी को साथ लेकर चलना चाहिए और इसका इस्तेमाल चुनिंदा मानवाधिकार रक्षकों को अपने मानवाधिकारों के इस्तेमाल रोकने के लिए नहीं किया जा सकता।

24 मार्च को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी ने कोविड 19 के प्रसार को रोकने के लिए देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की थी। इससे लाखों प्रवासी मजदूर बेरोजगार हो गये। उनके मुलभूत अधिकारों के प्रति किसी ने कुछ सोचा नहीं। तब कुछ असहाय श्रमिकों ने सड़क पर उतरकर अपनी घर वापसी की माँग को लेकर आंदोलन किया। अहमदाबाद में हुआ यह प्रदर्शन मालिक और सरकारों के खिलाफ एक तरह से विस्फोट था। बहुत आंदोलन के बाद उन्हें घर वापसी के लिए सरकार की तरफ से देन और बस का इंतजाम किया गया। मगर उनके घर पहुँचने तक सुविधाओं का उतना खयाल रखा नहीं गया। आज पूरे देश में लोगों को कोविड 19 से बचाने के लिए कोशिश करनेवाले डॉक्टर, उनके सहयोगी तथा कर्मचारी इनके स्वास्थ्य का खयाल रखना बहुत जरूरी हैं। लेकिन ऐसा होते हुए दिखाई नहीं देता। पुलिस कर्मचारी जान हथेली पर रखकर लोगों की सुरक्षा में लगे हुए हैं। लेकिन उनकी रक्षा के लिए क्या किया जा रहा है? यह प्रश्नचिन्ह कोविड 19 के आपातकालीन स्थिति में उभरता हुआ दिखाई दे रहा है। आज मानव अधिकार और कर्तव्यों को जगाने की सख्त जरूरत महसूस हो रही है।

निष्कर्ष

विकास और मानव अस्तित्व की रक्षा का सवाल भारत में विरोधाभासी रहा है, इस मुद्दे पर अक्सर आंदोलन भी होते रहे हैं और कोविड 19 संक्रमण एक पब्लिक हेल्थ इमरजेंसी हैं। लेकिन यह महामारी इससे कहीं अधिक आर्थिक, सामाजिक और एक मानव संकट हैं। यह खतरा वायरस हैं। हमें इसके प्रति सजग रहना जरूरी है। अपने अधिकारों के प्रति भी हमें सावधान रहकर सरकार की तरफ से सहायता लेकर हमें अपने कर्तव्यों के प्रति भी सचेत रहना होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. मानव अधिकार: नई दिशाएँ, अंक 14 वर्ष 2017
2. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
3. गुगल समाचार

CODEN: IJARPF
Index Copernicus
Impact Factor: RJIF 8.4
ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869

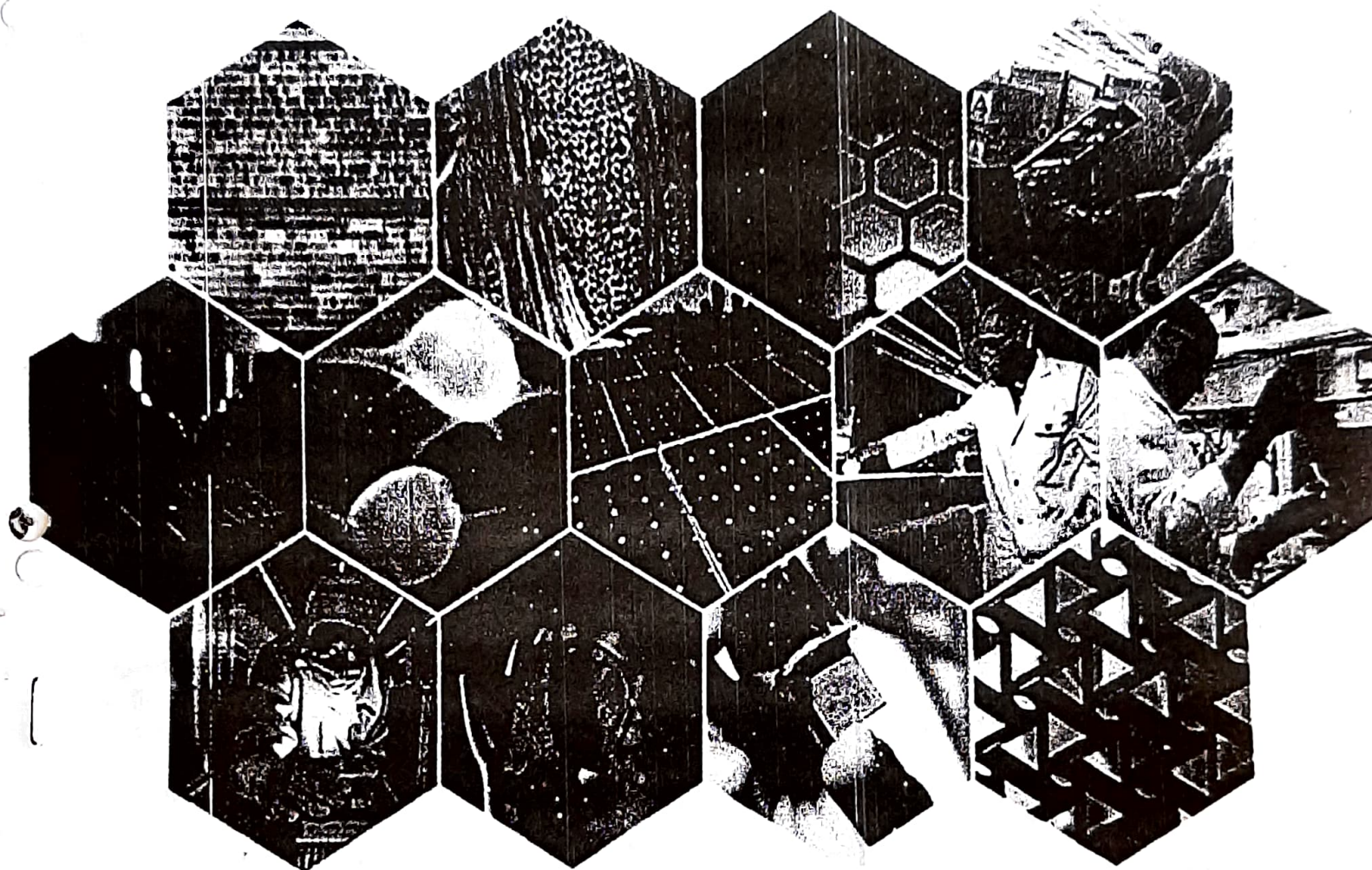
VOLUME 7

ISSUE 4

APRIL

2021

MONTHLY



विद्या शशिशेखर शिंदे
 प. सी. एस. कॉलेज खेड,
 नागिरी, महाराष्ट्र, भारत

महात्मा फुलेजी के काव्य में जनकांती की चेतना

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

सारांश

महात्मा फुलेजी ब्रिटिश काल के जनकांती के जनक माने जाते हैं। पूरे विश्व में महात्मा फुलेजी समाजसुधारक के रूप में पहचानते हैं। लेकिन उन्होंने उस समय को पहचानकर समाज को जगाने के लिए काव्य की रचना भी उच्चतम रूप में की है। उनके समाज सुधार के सामने उनका कवि रूप पिछे रह गया। महिलाओं के लिए उनका कार्य सराहनीय है। अपनी पत्नी कांतिज्योती सावित्रीबाई फुले के द्वारा शिक्षा का पवित्र कार्य आरंभ किया। इस काम के साथ साथ दूसरी तरफ निम्नवर्गीय समाज के लिए काव्य के माध्यम से शिक्षा के प्रति जागरूक करना आरंभ किया था। ब्रिटिश लोग शिक्षा के माध्यम से लोगों में उच्च नीचता का भेदभाव कर रहे थे वह उन्हें पसंद नहीं था। तब उन्होंने अपने लोगों के मन के भीतर मानवता का एहसास जगाया। वर्तमान काल में भी इसी तरह शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता की जरूरत महसूस होती है।

उद्देश

1. महात्मा फुलेजी का साहित्य के क्षेत्र में योगदान प्रस्तुत करना।
2. उनके समाजसुधारक रूप के साथ साथ कवि के रूप में पहचान कराना।
3. उनकी कविता मानवतावादी चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।
4. वर्तमान काल को भी उनकी कविताएं चेतावनी देती हैं।

कूटशब्द: समाजसुधारक, मानवतावादी चेतनाएं, शिक्षा

प्रस्तावना

महात्मा फुलेजी का काल आधुनिक युग के आरंभ का माना जाता है। उसी समय हमारे देश में ब्रिटिश सत्ता के द्वारा शिक्षा के द्वार खुल रहे थे। लेकिन इसी काल में हमारे देश की सामाजिक परिस्थिति बहुत कष्टप्रद होती जा रही थी। अंधश्रद्धा, रुढ़ि, परंपरा, जाति-भेद ऐसी अनिष्ट प्रथाएँ बहुत जोरों से चल रही थी। निम्नवर्गीय समाज में इन अनिष्ट प्रथाओं के कारण उच्च वर्ग के लोगों के माध्यम से शोषण किया जा रहा था। उस शोषण के विरोध में महात्मा फुलेजी ने अपनी लेखनी के माध्यम से चेतावनी देने का प्रयास किया। इस तरह का समाज उन्हें अपेक्षित नहीं था। ऐसे भारतीय समाज का दर्शन उन्हें अंदर से बेचैन कर रहा था। निम्न स्तर का समाज गुलामी में जी रहा था। उन्हें उससे बाहर निकालकर नये समाज की निर्मिति करना उनके जीवन का ध्येय था। उनके लिए शिक्षा का द्वार खोलकर उनका विकास करना इसी मूलमंत्र को लेकर फुलेजी ने सत्यशोधक समाज का निर्माण किया। धर्मग्रंथरचना यह कुछ स्वार्थप्रेरित होने के कारण वह समाज के हित में न होकर वह मानव-मानव के बीच जो असमानता का जो भेदभाव किया जा रहा था उसके विरोध में आवाज बुलंद कर दी। उन्होंने गद्य तथा पद्य दोनों में साहित्य की रचना की। उसके लिए उन्होंने काव्य के अंतर्गत पोवाडा, नाटक, अभंग, अखंड ऐसी रचनाओं के माध्यम से क्षुद्र मानव के मन में कांति की चेतना भरकर उन्हें मानव की उच्चता प्रदान करने का सफलतापूर्वक प्रयत्न किया।

काल की परिस्थिति का प्रभाव

महात्मा फुलेजी का काल पेशवे साम्राज्य का अस्त और ब्रिटिश सत्ता का आरंभ था। इस समय स्वाभाविक रूप से आधुनिक समाजव्यवस्था का निर्माण हो रहा था। ब्रिटिश लोग हमारे देश के ज्ञानी तथा श्रमिक लोगों की सहायता से राज्यकारभार चलाने लगे थे। उस समय हमारे देश की जनता अधिकतर अनपढ़ थे। शिक्षा प्राप्त लोग उच्चवर्गीय थे और श्रमिक वर्ग अज्ञानी था। ब्रिटिशों ने उन्हें गुलाम बनाया। महात्मा फुले जी ने इस गुलामी का विरोध करना आरंभ किया। सबसे पहले ब्रिटिशों ने सबके उपर समान लगान लगा दिया। अज्ञानी और गरीब जनता इस अत्याचार को चुपचाप सहने लगी। अपने देश में रहकर विदेशीयों की गुलामी सहना यह फुलेजी को मान्य नहीं था।

ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ के नीचे काम करनेवाले अपने देश के उच्च वर्णीय थे। ये उच्च वर्णीय लोग अपने ही अज्ञानी जनता पर अत्याचार करने लगे। उन्हें लूटने लगे। इस बात का वर्णन करते हुए महात्मा फुले जी कहते हैं -

‘सा-यासह फंड शुद्र किती देती।
धूर्त आर्य खाती। शाळा खाती।
शुद्रादिक त्यांनी किती शिकवले।
कामगार केले। दावा आम्हाला।’

इसका अर्थ यह है कि, लगान के साथ साथ अन्य फंड शुद्र लोगों से सबसे ज्यादा लिया जा रहा था। लेकिन हमारे देश के आर्य लोग इतने चालाक थे कि वह बीच में हड़प कर रहे थे। प्रश्न पुछते हैं कि, इन्होंने शुद्र लोगों को कितना पढ़ाया और कितने लोगों को ग़म पर लगाया यह हमें दिखाओ। मतलब यह है कि ब्रिटिशों को अंधेरे में रखकर अंधाधुंध करनेवालों की तरफ संकेत करते हैं। शुद्र लोगों को पढ़ाना उनकी परंपरा के खिलाफ था। वह जितने अनपढ़ रहेंगे उन्हें अच्छा महसूस होता था। ब्रिटिश काल में हमारे देश के सभी उच्च वर्णीय लोग महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहे थे। यह सब देखकर फुले जी अपने भाईजनों को काँते की वेतना देते हुए कहते हैं-

‘तरुण शुद्रांनी विद्या संपादावी।
चाकरी धरावी शाळा खाती।
शाळेमध्ये कधी निवड नसावी।
मानवा शिकवी एक सहा।।
मुळी जातिभेद खुळास त्यागावे।
आर्या लाजवावे सत्कर्मी।’²

इसका अर्थ यह है कि, फुलेजी अपने समाज को शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहते हैं। पढ़ लिखकर स्कूल में अध्यापक की नौकरी करके अपने लोगों के भीतर आत्मविश्वास निर्माण कर सके। आनेवाली युवा पिढ़ी आत्मचेतना प्राप्त कर सके। उस समय उच्च वर्णीय अध्यापक शुद्र लोगों को पढ़ाते नहीं थे। जातिभेद उनके रंग में बसा हुआ था। ऐसे लोगों को आर्य कहकर पुकारते हैं। उन्हें शर्मिन्दगी महसूस हो ऐसा आचरण करने के लिए कहते हैं। यही परंपरा आगे चलकर छत्रपति शाहु महाराज ने अपनी कोल्हापूर संस्थान में सभी जातियों के लिए स्कूल तथा हॉस्टल का आरंभ किया। महात्मा फुलेजी के विचार आनेवाले युग के लिए पथप्रदर्शक बन गये।

ब्रिटिशों ने उच्च वर्णीय शिक्षित भारतीय लोगों के हाथ में अधिकार दिए थे। उन अधिकारों का ग़लत उपयोग करके वे अपने ही शुद्र लोगों के अज्ञान का लाभ उठाते हुए उनके उपर अन्याय कर रहे थे। एक तरफ़ चाहे जितना लगान जबरदस्ती से लेते थे और दूसरी तरफ़ ब्राह्मण लोग ईश्वर के नाम पर लूट रहे थे। यह सब देखकर महात्मा फुलेजी सबको समान शिक्षा का अधिकार मिलने के लिए संघर्ष करते हुए कहते हैं -

मानव शिक्षक नेमा निर्विवाद। आर्या भेदाभेद। त्यागा सर्व।।
भटाचे शिक्षण खोटा धर्म सार। कृत्रिमाचे घर मुनिमत।।³

उसका मतलब यह है कि, अगर शुद्र लोगों में आत्मविश्वास को जगाना है तो जातिभेद न करनेवाला इन्सान अध्यापक होना चाहिए। उच्च वर्णीय लोग शुद्र लोगों का तिरस्कार करते थे और उन्हें अछूत कहकर पुकारते थे। ऐसे लोगों को पढ़ने लिखने का अधिकार नहीं है ऐसी उनकी सोच थी। इस तरह मानव मानव के बीच भेदाभेद करनेवाले लोग तथा धर्म के नाम पर झुठ बोलनेवाले लोगों में इन्सानियत नहीं होगी ऐसा स्पष्ट रूप में

फुलेजी कहते हैं। शुद्र लोगों के बच्चों को स्कूल में अन्य बच्चों से दूर बिठाया जाता था। उनकी तरफ़ हीन दृष्टि से देखा जाता था। वर्तमान काल में भी शिक्षाव्यवस्था में जो भ्रष्टाचार दिखाई देता है उसका मूल कारण इसी व्यवस्था में छिपा हुआ दिखाई देता है। उच्च वर्णीय अध्यापक अपने बच्चों को जानबुझकर अधिक गुण देते थे और शुद्र वर्णीय लोगों के बच्चों को कम अवसर देकर उन्हें अपमानित करते थे। जिसके कारण उनका आत्मविश्वास कम हो जाता था। वह अपने आपको हीन समझ लेते थे। ऐसे लोगों के मन के भीतर आत्मविश्वास जगाने का प्रयत्न फुलेजी ने किया। वह ऐसे लोगों पर व्यंग प्रहार करते हुए कहते हैं -

जगदृष्टे आर्य जातीचे कमीन।
करी अपमान। शुद्रांचा हो।
पवित्र इंग्रज भटा बडविती।
मोकळे सोडती। जोती म्हणे।।⁴

उच्च वर्णीय आर्य लोग हीन जाति के लोगों पर जो अत्याचार करते थे उन्हें ब्रिटिश लोग पुण्यवान समझकर छोड़ देते थे। उन खिलाफ कुछ सुनते नहीं थे। तब फुलेजी स्कूल के नियमों को कुछ सुधार बताते हुए कहते हैं -

सरकारी शाळा आधी शुद्र भरा।
भटोबास थारा देउ नका।
भटावत तुम्ही शिक्षक बनावे।
त्यांना हटवावे। सत्यामध्ये।।⁵

महात्मा फुलेजी ब्रिटिशों को निर्भयतापूर्वक कहते हैं कि, सरकारी स्कूलों में शुद्र लोगों को अध्यापक के रूप में नियुक्त करना होगा। अपने लोगों को अधिकारपूर्वक कहते हैं कि, अध्यापक बनकर सच्चाई के मार्ग से आगे बढ़ना और ग़लत आचार करनेवालों को पिछे छोड़ देना होगा। हर मनुष्य ने पढ़लिख समानता का धर्म सीखना होगा। ज्ञान के दान में उच्च नीच भेदभाव करना इन्सानियत के खिलाफ़ है यह बात उन्होंने तरह बताया-

शुद्र मुली मुला। शाळेत घालावे।
सुशील करावे। सर्व कामी।।⁶

फुलेजी कहते थे कि, सब शुद्र लोगोंने पढ़-लिखकर विद्वान बनकर शिक्षा से ही अच्छा व्यक्तिमत्त्व निर्माण हो सकेगा। यह इसके उपर उनका विश्वास था। शुद्र लोगों के उपर वर्णीय लोग अन्याय कर रहे थे। इसका जवाब ज्ञान पाकर हम दे सकते हैं यह विचार फुलेजी ने शुद्र लोगों के भीतर जगाने के लिए कहते हैं -

शुद्राचे वंशज तुम्ही खरे खास।
दास जगतास। जोती म्हणे।।⁷

हम जन्म से शुद्र न होकर मानव हैं और सत्य का उद्धार करनेवाले हैं। यही पूरे विश्व को दिखाना होगा यह आत्मीय भाव उनके काव्यद्वारा प्रकट होता है। दलित, उपेक्षित, शुद्र अज्ञान के कारण पंडितों ने बताए ईश्वर, पोथी, पुराण तथा के उपर विश्वास रखते हैं। ब्राह्मण जो कहते हैं उन्हें मानकर चलते हैं उसका विरोध करते हुए फुलेजी कहते हैं

परजातीवा तुम्ही सोपू नका।
बुडविता फुका धर्म मीषे।।
वडील धाकुटे स्नही उभयताचे।

पंच स्वजातीचे निवडूनी ।।
वर्ष वय गुण प्रीत परस्पर ।
पाहा सारासार तपासूनी ।। ८

फुलेजी कहते थे कि, शुद्र लोग अपने जीवनविषयक महत्वपूर्ण निर्णय परजाती के उपर छोड़ देते हैं यह सरासर गलत है। हमारे जीवन के निर्णय ब्रिटीश लोग या उच्च वर्णीय लोग कैसे ले सकते हैं? इसके अलावा अपने लोगों के भीतर पंच नियुक्त करके उनको पास यह जिम्मेदारी देनी होगी। जिससे यह आपसी प्रेमभाव से निर्णय ले सकते हैं। वर्तमान काल में अनेक जातियों के भीतर इस तरह की न्यायप्रक्रिया शुरू हैं इसका पूरा श्रेय फुलेजी के उस समय के विचारों को दिया जाता है। इतना ही नहीं तो शादी या त्याहार के मंगल प्रसंग को लेकर भी अपने ही जाति के लोग पंडित का काम सीखकर वह पूरा करें। धीरे धीरे इस प्रथा का भी प्रचलन शुरू हो गया। आगे चलकर इन्हीं विचारों से प्रेरित छत्रपती शाहु महाराज ने प्रत्यक्ष रूप में इसका आरंभ किया था। उस समय महात्मा फुलेजी ने फक्कड शब्दों में विरोध करते हुए कहा कि,

देवा प्रार्थुनिया घालवावी माळ ।
मेळवुनी मेळ आनंदाचा ।
बाहमणाचे येथे नाही प्रयोजन ।
घावे हाकलूनी जोती म्हणे ।। ९

उच्च वर्णीय अपने आपको श्रेष्ठ, ज्ञानी, कुलवत, धर्मनिष्ठ, पवित्र, उद्धारकर्ते ऐसा मानते हैं लेकिन आचरण इन सबको उल्टा करते हैं। उन्होंने शुद्र लोगों के भीतर आत्मविश्वास जगाया। उच्च वर्णीयों ने शुद्र लोगों को डराया, धमकाया और ईश्वर के नाम पर अंधविश्वास को जगाया। वह युग युग से अज्ञानी लोगों को उगते रहे। इसके बारे में महात्मा फुलेजी कहते हैं -

भोळ्या भाविकाला ठक फसवितो ।
अधोगती जाती जोती म्हणे ।। १०

उच्च वर्णीय लोगों को ठग कहकर पुकारा और ऐसे लोग सद्गती प्राप्त नहीं कर सकते यह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया। उस समय के शुद्र वर्ग को चेतावनी देते हुए फुलेजी कहते हैं-

सत्तेवाचून सकळ कळा, झाल्या अवकळा, पुसा मनाला ।।
गोडी आर्जवाची लागली, लाज सोडली, पडला पाया ।। ११

आज शुद्र लोगों की जो दशा हो गयी है उसका कारण आज आपके हाथ में राजकीय, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सत्ता नहीं है। अपना साम्राज्य न होने के कारण यह दूर्दशा हो गयी है। इसी के कारण हमारा स्वाभिमान भी कुचला जा रहा है। उच्च वर्णीयों के सामने लाचारी से झुकने के बावजूद पेटभर खाना भी नसीब नहीं है। काम करने के बदले में अपमान और तिरस्कार मिलता है। इससे बाहर आने के लिए हमें अपने स्वाभिमान को जगाना जरूरी है। शुद्र लोगों ने इसके लिए पढ लिखकर समानता का धर्म गीतना होगा। उसके लिए उन्होंने चेतावनी देने का प्रयास किया।

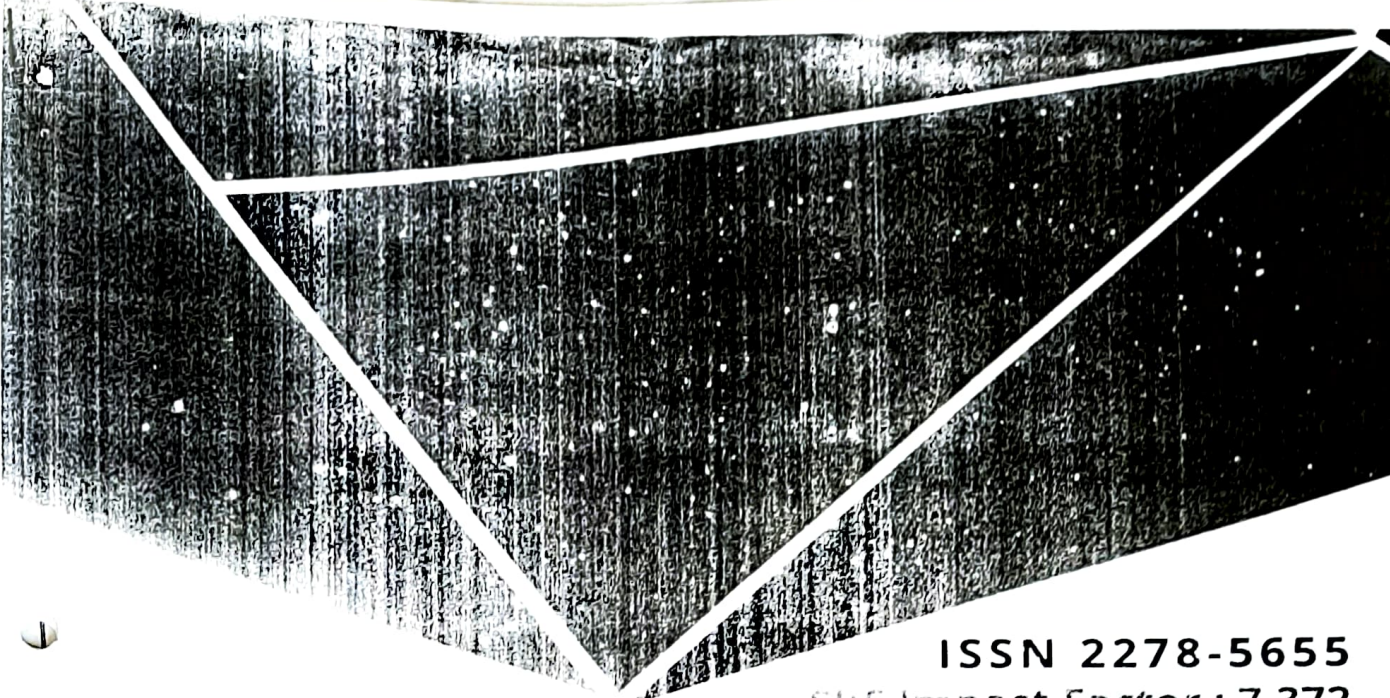
पक्ष

ज्ञान के अंधकार में भटकनेवाले भारतीय बहुजन समाज के तर आत्मविश्वास जगाने के लिए महात्मा फुलेजी ने अपना वन समर्पित किया। इसी कारण उच्च वर्णीयों ने उन्हें बहुत शान किया फिर भी वह अपने कार्य में अटल रहें। उन्होंने यधर्म को समाज में फैलाया इसी वजह से विरोधी लोगों ने वे जी के बारे में गलत प्रचार करने लगे थे। लेकिन आजीवन

वह सत्यशोधक समाज का निर्माण में लगे रहे हैं। आज महात्मा फुले जी समाजसुधारक के रूप में समाज में मान्यता प्राप्त हो गये। लेकिन वह एक श्रेष्ठ कवि भी थे। आज की युवा पिढी के लिए उनकी कविताएँ प्रेरणादायी साबित हो रही हैं। वर्तमान काल में भी जातिभेद, वंशभेद, धर्मभेद, वर्णभेद की दीवारें जनमानस को उखाड़ने पर तुली हुई हैं। आज शिक्षाव्यवस्था में भी जो अनाचार फैला हुआ है उसे रोकने का साहस फुले जी की कविताओं में स्पष्ट झलकता है। आज उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण हो रहा है। आज पढ़े लिखे लोग भी अन्याय चुपचाप सह रहे हैं। ऐसे लोगों के भीतर चेतावनी तथा आत्मप्रेरणा जगाने का प्रयास महात्मा फुलेजी के काव्य में दिखाई देता है। आज तक जितने भी महात्मा इस जगत् में अवतरित हुए उसमें फुलेजी का नाम आज भी उतना ही वंदनीय तथा पूजनीय है। इन्होंने लिखा हुआ काव्य आज भी हमारे लिए पथप्रदर्शक है। यह मेरा विश्वास है। इनका काव्य दर्शन इतना विशाल है कि इसे सभी ने पढ़कर अपने अंदर की चेतावनी को जगाना होगा।

संदर्भ

1. महात्मा फुले समग्र 1991 - य. दी. फडके - पृष्ठ 568
2. वही पृष्ठ 568
3. वही पृष्ठ 568
4. वही पृष्ठ 569
5. वही पृष्ठ 569
6. वही पृष्ठ 569
7. महात्मा फुले 2005 - चौधरी कृष्णा पृष्ठ 95
8. वही पृष्ठ 96
9. वही पृष्ठ 97
10. वही पृष्ठ 570
11. वही पृष्ठ 538
12. महात्मा फुले जनक्रांति के जनक-धनंजय कीर



ISSN 2278-5655
SJIF Impact Factor : 7.372
Volume-X, Issues- I

AMIERJ

**AARHAT MULTIDISCIPLINARY INTERNATIONAL
EDUCATION RESEARCH JOURNAL**

Peer Reviewed Journal

Chief-Editor: Dr.Rajendra Patil

**समकालीन मन्नू भंडारी जी की कहानियों में चित्रित महानगरीय जीवन**

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

आर. सी. एस. कॉलेज, खेड, खोंडा मंडगांव, ता. खेड 415709

Abstract

मन्नूजी महानगरीय विसंगतियों और विषमताओं की सूक्ष्म दृष्टि ही नहीं बरना वितक भी हैं। आज भूमंडलीकरण के कारण पाश्चात्य देशों की समस्याएँ केवल उनकी अपनी समस्याएँ न रहकर वह विश्वव्यापी हो गयी हैं। यह इनकी कहानियों से पता चलता है। इसमें कोई शक नहीं है कि मन्नूजी ने भारतीय समाज के बदलते चेहरे को अपनी कहानियों के माध्यम से उच्च बनाया है। भारतीय समाज में युग परिवर्तन की प्रक्रिया युगों से चली आ रही है। इस बात को केंद्र में रखकर देखे तो मन्नूजी की कहानियों में यह बात स्पष्ट रूप में झलकती है। महानगरीय चकाचौंध के पीछे छिपे अंधकार से बेखबर ग्रामीण व्यक्ति अपनी परंपरा तथा परिवेश से कटकर शहर की तरफ दौड़ा जा रहा है। वहाँ पहुँचने के बाद इन लोगों के भीतर घुटन महसूस होती है उराका वर्णन करके महानगरीय संस्कृति का बदलता परिवेश मन्नू भंडारी जी ने व्यक्त किया है।

उद्देश्य –

1. ग्रामीण लोगों का शहर की तरफ आकर्षित होना.
2. महानगरीय परिवेश को व्यक्त करके कहानिकार की संवेदना को प्रस्तुत करना.
3. कहानियों के माध्यम से महानगरीय समस्याओं को चित्रित करना.
4. कहानियों द्वारा मूल्यों के विघटन को उजागर करना.

Aarhat Publication & Aarhat Journals is licensed Based on a work at <http://www.aarhat.com/amierj/>**प्रास्ताविक –**

साहित्य में कहानी रामृद्ध और सामान्य जनता में सबसे लोकप्रिय विधा मानी गयी है। साहित्य की अनेकविध विधाओं में कहानी का अपना अलग स्थान है। कहानी का आविर्भाव जीवन के सच्चाई के साथ उजागर होता है। कहानी अपने कम शब्दों में सारे संसार को समेटने की कोशिश करती है। कहानिकार अपने आसपास घटी, यथार्थ कथासूत्र को अपनाता है। भागती दौड़ती जिंदगी के विभिन्न पक्षों का विस्तृत गहन और सूक्ष्म विश्लेषण कहानी के माध्यम से किया जाता है। 'शहरीकरण' आज विश्वरूपी जाल बनती जा रही है। भारत के आजादी के पश्चात् शिक्षा और औद्योगिकरण के विकास ने गाँववालों को अपनी ओर आकर्षित किया



सर्वाधिक प्रभाव डाला हैं। मानवीय संबंधों में अजीब किस्म का ठंडापन आने लगा हैं। शहरों में रहनेवाले व्यक्ति के लिए घर आश्रय स्थान या ख्वाबगाह न रहकर आसरा बन गया हैं। ऐसे परिवेश में मानव संबंधों के महीन धागे टूट रहे हैं और इससे अलगाव या विघटन की स्थिति निर्माण हो रही हैं।

पीढियों में अन्तराल एवं संघर्ष –

वर्तमान समय में शिक्षा का व्यापार बढ़ रहा हैं। भारतीय समाज में दो पीढियों के बीच संघर्ष की प्रवृत्ति को गति मिली हैं। पारिवारिक शिथिलता का एक कारण दो पीढियों का संघर्ष भी हैं। इसपर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल लिखते हैं— “परिवार का सबसे बड़ा व्यक्ति अब उसका स्वामी नहीं रह गया जिसके पैसे के आश्रय में परिवार चलने लगा। घर की मालकिन अब सास नहीं बहू हो गयी, क्योंकि उसका पति कमाता हैं और पूरे परिवार का भरण पोषण करता हैं। 3 आज पारंपारिक संस्कार पुरानी पीढी तक ही सीमित रह गये हैं। आधुनिकता का अंधानुकरण बाप-बेटे में अंतर पैदा कर रहे हैं। लड़का लड़कीयाँ अब घर से निकलकर लोगों के साथ स्वच्छंद रूप से मिलने-जुलने लगे हैं। अपने जीवन के संबंध में लिए जानेवाले फैसले का अधिकार माँ-बाप से छिनकर युवाओं ने अपने पास ले लिया हैं। शिक्षा, विवाह, एवं व्यवसाय जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों में वयोवृद्ध सदस्यों की सत्ता निश्चित रूप से कम हुई हैं। सिनेमा, होटल, पाश्चात्यों का प्रभाव और नियंत्रण कम हो रहे हैं। स्वतंत्रता और उन्मुक्त भोग की भावना से परिवार में संघर्ष बढ़ रहा हैं। मन्नु भंडारी जी की ‘त्रिशंकु’ कहानी एक वर्तमान सत्य को उद्घाटीत करती हैं। तनु के नाना परंपरा को अपनानेवाले हैं और तनु आधुनिकता को अपनाती हैं। ऐसी स्थिति में संघर्ष अनुभव होता हैं। क्या करूँ या क्या न करूँ? वह न इस स्थिति को स्वीकार पा रही थी और न अपने ही द्वारा बड़े जोश से शुरू किये इस सिलसिले को नकार ही पा रही थी।⁴

‘तीसरा हिस्सा’ कहानी में पिता-पुत्र का संघर्ष व्यक्त किया हैं। कहानी का नायक शेर बाबू रात को देर से लौटे अपने बेटे को सुधीर को डौटते हैं। पूछने पर ‘यह टाइम है घर लौटने का?’ बेटा उल्टा जवाब देता हैं। वह कहता है, “टाईम!” अरे घर लौटने के टाइम का नियम तो एमरजेंसी के दौरान भी नहीं बना था। जाइए, जाकर सो रहिए.”⁵ नई पीढी अपना रास्ता खुद तराशना चाहती हैं। वह अपने कार्यों में किसी की दखलअंदाजी नहीं चाहती।

स्त्री-पुरुष संबंधों में बदलते प्रतिमान—

सृष्टी का आधार स्त्री-पुरुष हैं। आधुनिक परिवार में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार मिलने से उनके संबंधों में बड़ा भारी परिवर्तन देखने को मिल रहा हैं। स्त्री-पुरुष समान रूप से जीवन को भोगने लगे हैं। उन्मुक्त संबंधों को आधुनिक सभ्यता का वेश पहनकर अब भारतीय संस्कृति को धराशयी किया जा रहा हैं। समाज में पतिव्रता की पररागत धारणाएँ टूटती जा रही हैं। पाश्चात्य प्रभाव से नैतिकता की परिभाषा ही बदल गयी हैं। एकनिष्ठता की माँग अब अनुचित प्रतीत होती हैं। अब यह स्वीकार्य है कि पति और प्रेमी दो पृथक-पृथक



अलसाए अंग तड़प रहे थे, कसमसा रहे थे किसी भी बाँहों में जकड़ जाने के लिए।”⁹

‘क्षय’ कहानी की कुंती बीमार पिता क्षय रोगी है और छोटे भाई की आवश्यकता की पूर्ति करते करते यंत्रणा का शिकार हो जाती हैं। वह भी मुक्त जीवन का हिस्सा बनकर उड़ना चाहती हैं, पर जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो पाती और बोझ तले घुटन एवं तनाव महसूस करने लगती हैं।

अकेलापन –

महानगरों के मानव के पास सब कुछ होते हुए भी वह अकेला है। आधुनिकता बोध, संबंधों में आये बिखराव, मूल्य संक्रमण आदी ऐसे तत्व हैं जो अकेलेपन का एहसास देते हैं। कृष्ण में भी अब कुंठा, परायापन, तनाव, अलगाव, आदी अकेलेपन तक पहुँचने में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। संयुक्त परिवार का विघटन गाँव से अधिक महानगरों में देखा जा सकता है। परिणामस्वरूप महानगरीय व्यक्ति को अपना दुःख दर्द बाँटने के लिए कोई स्वजन नहीं मिलता। महानगरीय मानव अपनी समस्याएँ, दर्द, व्यस्तता, तनाव आदि में सिमटकर एक दिन हृदयहीन तथा संवेदहीन हो जाता है।

‘शायद’ कहानी का नायक राखाल रोगित आमदनी के कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों को ठिक ढंग से नहीं निभा पाता तब वह परिवार के बीच भी अपने आपको अकेला महसूस करता है। “रो धोकर माला तो सो गई पर राखाल को किसी तरह नींद नहीं आई। अभी तो नहीं लग रहा है कि यह घर में है। अभी भी यह लग रहा है, मानो वह जहाज में बैठा है और उसे और माला के बीच बहुत-बहुत दूरियाँ हैं।”¹⁰

‘अकेली’ कहानी की सोमा बुआ पुत्र के मृत्युपरांत और पति के संन्यासी हो जाने के बाद अकेलेपन के बोध से ग्रस्त हो जाती है। वह समाज के अच्छे-बुरे प्रसंगों में सम्मिलित होकर भी अकेलेपन की पीड़ा को मनुजी ने कहानी के आरंभ में इस प्रकार व्यक्त किया है:-

“ सोमा बुआ बुढ़िया हैं।

सोमा बुआ परित्यक्ता हैं।

सोमा बुआ अकेली हैं।”¹¹

उस प्रकार अकेलापन आज के युग का सामाजिक यथार्थ है। महानगरों में रहनेवाले अधिकांश इस बोध से ग्रस्त हैं, क्योंकि महानगर भीड़ का जंगल है। यहाँ किसी से कोई सरोकार नहीं। पैसों की दौड़ में वे सारे रिश्ते-नाते को भूल रहा है या तोड़ रहा है। ऐसी स्थिति में महानगरीय मानव हताश, पराजय और अकेलापन महसूस करता है। मनु भंडारीजीने अपने कहानीयों द्वारा यह बताया है।

मूल्यों का –हास –

महानगरीय जीवन की सबसे गंभीर तथा चिंतनीय समस्या मूल्यों का –हास है। नगरों में मूल्यों का नैतिक पतन हो चुका है। पुराने मूल्य तेजी से टूटने लगे हैं। आज के वैज्ञानिक युग में नैतिक मूल्यों की रुढ़ी को स्वीकार जाने की प्रवृत्ति का विरोध होने लगा है। व्यक्ति में मानव सहज संवेदना का भी अभाव दिखाई देता



- त्रिशंकु, संग्रह शायद-कहानी, मन्नू भंडारी-पृष्ठ 91
- भगवतीचरण के उपन्यासों में युग चेतना-डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृष्ठ 67
- हिंदी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ- डॉ. उषा मंत्री, पेपर बैंक
- मेरी प्रिय कहानियाँ, संग्रह, सजा, कहानी, मन्नू भंडारी, पृष्ठ 91
- हिंदी उपन्यास - सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप-प्रभा वर्मा, पृष्ठ 145
- यही सच है, संग्रह तृतीय संस्करण 1978, तीसरा आदमी, मन्नू भंडारी पृष्ठ 52
- काम संबंधों का यथार्थ और समकालीन हिंदी कहानी-डॉ. वीरेंद्र सक्सेना पृष्ठ 63
- संपूर्ण कहानियाँ, संग्रह, घुटन कहानी, मन्नू भंडारी-पृष्ठ 156
- मेरी प्रिय कहानियों, संग्रह, शायद, कहानी-मन्नू भंडारी पृष्ठ 119
- संपूर्ण कहानियाँ-संग्रह, अकेली, कहानी-मन्नू भंडारी पृष्ठ 119
- वही - दोन कलाकार - वही पृष्ठ 65
- वही खोटे सिक्के - वही पृष्ठ 149



शकुंतिका उपन्यास में युगबोध और जनवादी चेतना

डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे

असोसिएट प्रोफेसर, आय. सी. एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र, भारत

सारांश

एक मानवीय इकाई के रूप में सभ्यता एवं संस्कृति के सर्वांगीण विकास में स्त्रियों की भागीदारी हमेशा से महत्वपूर्ण रही है। परिवार और समाज में सहभागिता के अतिरिक्त वह निर्विवाद रूप से पुरुषों के आकर्षण का केंद्र भी रही है—भावनात्मक और शारीरिक रूप से भी। ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता है स्थितियों कमशः बदलती हैं। जाहिर है बदलते हालात में स्त्री-पुरुष के बीच का परस्पर संबंध स्वाभाविक रूप से बदला है और बिगड़ा भी है। स्त्री का परिवार में महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाने के बावजूद उसकी स्थिति महत्वपूर्ण नहीं मानी नहीं जाती। मानवीय इकाई के रूप में स्त्री और पुरुष का समान महत्व है, यह सैद्धांतिक रूप से सच होते हुए भी व्यावहारिक रूप से झूठ लगता है। स्त्री अस्मिता को लेकर बाहरी और भीतरी मोर्चे का अंतःसंघर्ष लंबे अरसे तक चला और सामाजिक साहित्यिक विमर्श का एक स्वाभाविक एवं खास हिस्सा बन गया। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी साहित्य की केंद्रीय संवेदना के रूप में स्त्री चेतना एवं संघर्ष के कई रूप में स्त्री लगभग आधी आबादी है इसलिए उसका कोई सपना और संघर्ष एकांगी और निरर्थक नहीं हो सकता। संघर्षधर्मी चेतना से बनते बिगड़े मूल्य और हाशिए से मुख्य धारा में आने का संघर्ष समकालीन उपन्यासों में 'शकुंतिका' इस भगवानदास मोरवालजी के उपन्यास में स्पष्ट रूप में प्रतिबिंबित हुआ है। स्त्रियों के भीतर चेतावनी जगाकर उन्हें नये युग में किस तरह आगे बढ़ना है उसकी प्रेरणा देता है।

मुख्य शब्द: युगबोध और जनवादी चेतना, सभ्यता एवं संस्कृति

प्रस्तावना

वैसे ही स्त्री ही स्त्री की दुश्मन बनी हुई है क्योंकि आज तक समाज में सास-बहू के झगड़े भेददृष्टी के कारण ही होते हैं। भारतीय समाज में लड़कियों को लड़कों की तरह सुविधा नहीं मिलती है न घूमने फिरने की आजादी। उसकी तरफ उपेक्षा की दृष्टी से देखा जाता है। इस उपन्यास में स्त्री की इस मानसिकता में परिवर्तन लाकर समाज के सामने एक नया आदर्श रखा गया है। लड़की को जन्म से पराया धन कहकर उसे अभागन कहनेवाली सबसे पहले उसकी माँ ही होती है। अगर माँ की इस भेददृष्टी में परिवर्तन आ जाय तो शायद एक स्त्री दूसरे स्त्री का सम्मान करने लगेगी। हमारे समाज में जो अनेक परंपराएँ बनायी गयी हैं जो स्त्री को हमेशा उपेक्षित रखती हैं ऐसी परंपराओं को छेद देकर नयी संभावनाओं को उजागर करने का साहस इस उपन्यास के माध्यम से किया गया है।

आधुनिक काल में साहित्य के माध्यम से सिर्फ स्त्री के उपर हो रहे वाले अत्याचार दिखाकर उसे और उपेक्षित करने अपने के बजाय स्त्री अपने भीतर परिवर्तन कैसे कर सकती है इसका वास्तववादी चित्रण इस उपन्यास के माध्यम से किया गया है। उपन्यास के आरंभ में स्त्री का परंपरागत रूप चित्रित करके अनुभव के आधार पर धीरे धीरे लड़कियों के बारे में पुराने दकियानुरी विचार हटकर नये मूल्यों का आरंभ परिवार के भीतर से होता हुआ दिखाई देता है। नये विचार एकदम नहीं आ सकते उसके लिए समय देना होगा। दुर्गा जैसी सकारात्मक सोच रखनेवाली एकाद स्त्री भी अपने अनुभव के आधार पर अपने आसपास के लोगों के मन के भीतर लड़कियों के प्रति सम्मान की भावना निर्माण कर सकती है। समय की नजाकत को समझकर हमें आगे बढ़ना होगा।

शोध कार्य का उद्देश्य

1. भारतीय संस्कृति पुरुषप्रधान संस्कृति होने के कारण परिवार में स्त्री को हीन माना जाता है इस परंपरा में परिवर्तन लाने का प्रयास उपन्यास में किस तरह से किया है यह दर्शाना है।

2. स्त्री-पुरुष भेदाभेद को मन से दूर करने के लिए सामाजिक परिवर्तन की जरूरत दिखाकर उसमें समय की नजाकत को पहचानना इस संकेत को उपन्यास के माध्यम से परिचित करना है।
3. स्त्री शिक्षा के माध्यम से स्त्री सबलता का संकेत देकर जागरूकता लाने का संकेत इस उपन्यास के माध्यम से किसतरह से किया है वह दिखाकर समाज में संवेदना जागृत करना है।

'शकुंतिका' उपन्यास का अनुशीलन

एक मानवीय इकाई के रूप में सभ्यता एवं संस्कृति के सर्वांगीण विकास में स्त्रियों की भागीदारी हमेशा से महत्वपूर्ण रही है। परिवार और समाज में सहभागिता के अतिरिक्त वह निर्विवाद रूप से पुरुषों के आकर्षण का केंद्र भी रही है—भावनात्मक और शारीरिक रूप से भी। जाहिर है बदलते हालात में स्त्री पुरुष के बीच का पारस्परिक संबंध स्वाभाविक रूप से बदला है और बिगड़ा भी है। स्त्री परिवार में महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाने के बावजूद उसकी स्थिति महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती। पितृसत्ताक व्यवस्था के अधीन वह दोहरे किस्म की नागरिक बनी रही। मानवीय इकाई के रूप में स्त्री और पुरुष का समान महत्व है, यह सैद्धांतिक रूप से सच होते हुए भी व्यावहारिक रूप से झूठ लगता है। स्त्री अस्मिता को लेकर बाहरी और भीतरी मोर्चे का अंतःसंघर्ष लंबे अरसे तक चला और सामाजिक, साहित्यिक विमर्श का एक स्वाभाविक एवं खास हिस्सा बन गया। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी साहित्य की केंद्रीय संवेदना के रूप में स्त्री-चेतना एवं संघर्ष के कई रूप और ढंग दिखते हैं। एक मानवीय इकाई के रूप में स्त्री की लगभग आधी आबादी है इसलिए उसका कोई सपना और संघर्ष एकांगी और निरर्थक नहीं हो सकता। संघर्षधर्मी चेतना से बनते बिगड़े मूल्य और हाशिए से मुख्य धारा में आने का संघर्ष समकालीन उपन्यासों में 'शकुंतिका' इस भगवानदास मोरवालजी के उपन्यास में स्पष्ट रूप में व्यक्त होता है।

श्रम करें, इस हेतु प्रोत्साहित करता है। वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद एक दृष्टीकोन है जिससे जीवन तथा जगत् को परखा तथा चित्रित किया जाता है। भगवानदासजी का 'शकुंतिका' उपन्यास स्त्री की पारिवारिक स्थिति को दर्शाता है। लेकिन स्त्री के प्रति परंपरागत दृष्टीकोन दिखाकर उसमें परिवर्तनरूपी सामाजिक चेतना की काँति दिखाकर वह समाज को सचेत करना चाहते हैं। अपने विचारों को प्रस्तुत करने की लेखक की अपनी एक संतुलित दृष्टी है जो उपन्यास की मार्मिकता को स्पष्ट करती है। इस उपन्यास में नारी के पात्र दृढ़ निश्चयी और नई चेतना से युक्त हैं। पढ़ी और सुनी हुई दुनिया पर उनका भरोसा नहीं है। वे देखी हुई दुनिया के लेखक हैं। इसलिए उपन्यास के सभी चरित्र बेहद प्रामाणिक हैं।

उपन्यास का देशकाल तथा वातावरण

‘शकुंतिका’ यह उपन्यास आधुनिक काल की शहरी सभ्यता में विचरणा करनेवाले दो पड़ोसियों के बीच का वातावरण व्यक्त करता है। आज सुशिक्षित, सुसंस्कृत, सभ्य कहनेवाले शहरी लोग भी परंपरागत दृष्टीकोन को अपनाते हैं। जिनके घरों में लड़के पैदा होते हैं वहाँ जश्न मनाया जाता है और लड़कियाँ पैदा होने पर मातम मनाया जाता है। इतना ही नहीं तो कई माताएँ लड़की का जन्म होते ही उसे लावारिस की तरह फेंक देती हैं। कोई मानवतावादी उसे उठाकर अनाथाश्रम में पहुँचा देते हैं। विज्ञान की गर्भजल परीक्षा का उपयोग लिंग पहचाने के लिए किया जा रहा है। अगर तीन मास का गर्भ होने से पहले गर्भ लड़की का है यह पता चलने पर उसे गर्भ में मार देना यह शहरी संस्कृति की परंपरा बनने लगी। उसी का वर्णन इस उपन्यास में किया है। साथ साथ गर्भजल परीक्षा पर लाठी गयी बंदी का भी वर्णन किया है। कन्या भ्रुण हत्या कानूनन जुर्म होने के बाद भी धन के लालच में कुछ लोग यह धिनीना कृत्य आज भी कर रहे हैं। इसकी ओर लेखक ने संकेत किया है। परिवार को सुशिक्षित लोगों कि यह जिम्मेदारी है कि समय पर अपने लोगों को समझाकर उन्हें सही मार्ग पर लाना है। शहरी सभ्यता में पला हुआ यह परिवार पढ़ा-लिखा होकर भी परंपरागत संस्कारों को आगे बढ़ाते हुए दिखाकर उससे बाहर लाने के लिए ऐसे चरित्रों का निर्माण किया जो अपने और आसपास का अनुभव पाकर परंपराओं में परिवर्तन लाने का प्रयास मन से करते हैं। लेखक कहते हैं कि हमें परिवर्तन की चाहत मन में उत्तरकर करनी होगी जो सदा के लिए रहेगी और उसे आगे बढ़ाएगी। इस उपन्यास का देशकाल तथा वातावरण शहरी सभ्यता से जुड़ा है। उपन्यास के आरंभ में ही लेखक कहते हैं कि, “देश के दूसरे शहरों की तरह यह कॉलोनी भी विविधता में एकता की मिसाल लिए छोटा सा एक ऐसा टापू है, जहाँ सब एक दूसरे के सुख दुःख में बराबर के भागीदार होते हैं।” शहर में रहनेवाले लोग अलग-अलग जगहों से विस्थापित होकर आये हैं। उसमें विभिन्न धर्म जाति के लोग रहते हैं। लेखक को हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानी ‘पूँस की रात’ की याद आती है, जिसमें उसका नायक हल्कू ठंड के कारण कॉप रहा है और कंवरटें बदल रहा है। शहरी सभ्यता में रहनेवाले लोग इसलिए कंवरटें बदलते हैं क्योंकि पड़ोस में लड़का होने की खुशी में देर रात डी.जे. का कर्णकर्कश भोंपू बज रहा है। जिसके कारण पड़ोसीयों की नींद उचट गयी है। दशरथ और भगवती का पूरा परिवार इस आवाज के कारण कंवरटें बदल रहा है। यह कानूनन अपराध होते हुए भी डर और सभ्यता के कारण वह पड़ोसीयों को कुछ कह नहीं पाते। अन्याय को चुपचाप सहने के वह अधीन हो जाते हैं। एक नागरिक के अधिकार को जानना बहुत जरूरी होता है मगर धनपतियों के डर के कारण और अपनी

उपन्यास का कथाशिल्प

उपन्यास की कथा गार्मिक तथा जारुणिक स्थितियों को दर्शाती है। समूची कथा भावुकता के तानों यानों से निर्मित है। जिसमें एक प्रवाह है। भावनाओं का यह कथा प्रवाह बड़ा ही रोचक बना है जो पाठकों को भी अपने साथ बहाकर ले जाता है। कहीं भी कथा में शिथिलता दिखाई नहीं देती। वस्तुतः जहाँ भावावेग की प्रबलता होती है, वहाँ कथा का सौंदर्य निखर उठता है। 'शकुंतिका' उपन्यास का कथाशिल्प मात्र प्रयोग की दृष्टि से न करके उसके साथ लेखक की गहरी अनुभूतियों जुड़ी हुई स्पष्ट दिखाई देती है। यही कारण है कि उसमें सहजता और स्वाभाविकता पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है। समकालीन शहरी हो या ग्रामीण संस्कृति में लड़की के जन्म को आज भी नकारा जा रहा है। यह हमारी मानसिक दुर्बलता का द्योतक है। कन्या भ्रूण हत्या सम्य समाज का वह हथियार है जो उन्हें राबके सामने कलंकित होने से बचाता है। मगर इसके दुष्परिणाम जय दिखाई देने लगे तब इसे कानूनन अपराध घोषित करना पड़ा। फिर भी यह धिनौने कृत्य आज भी जारी है। इसके उपर कानूनन उपाय जारी किये गये हैं। मगर यह सच है कि, कानून इस समस्या का समाधान कभी नहीं ढूँढ सकता। केवल इसका इलाज जनजागरुकता है। स्त्री के प्रति समाज के भीतर संवेदनाओं को जगाना है। जिसमें समाज में फैला हुआ अज्ञान और अंधविश्वास को अंधेरा हट सकता है। भगवानदास मोरवाल जी ने इस उपन्यास में इन्हीं बातों पर अधिक बल दिया है। चिकनी चुपड़ी बातें करके और महिला दिन मनाकर स्त्री को सम्मान नहीं मिल सकता। उसके लिए जो स्त्री ही स्त्री की दुश्मन बनी है उसे अपनी मानसिकता में परिवर्तन करना होगा। जो पुरुष स्त्री का सम्मान करना चाहते हैं वह आगे आकर समाज और परिवार में स्त्री को आदर दिलाने की कोशिश करें जो इस उपन्यास में दिखाया है। आज स्त्री ही स्त्री की असली दुश्मन बनी हुई है, उसमें परिवर्तन लाना जरूरी है। लेकिन उसके लिए लेखक ने उपन्यास के माध्यम से ऐसे दो पुरुष पात्र चित्रित किये हैं जिनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। स्त्री का सम्मान तभी बढ़ता है, जब परिवार के पुरुष उनका हाँसला बढ़ाकर उन्हें प्रेरणा देते हैं। इस उपन्यास में परंपरागत स्त्री के रूप में भगवती का पात्र वही बात सोचता है, जो अक्सर भारतीय स्त्री सोचती है। भगवती की बहू तिसरी बार गर्भवती है, पहली दो लड़कियाँ और उपर से वह तिसरी बार लड़की नहीं चाहती हैं। तब पड़ोसन दुर्गा उसे मेडिकल जाँच करके लड़की हो तो गर्भ हटाने की सलाह देती हैं, जो उसे सही लगता है मगर अब यह नहीं हो सकता यह समझने के पश्चात् जब बहू को तिसरी बार लड़की होती है तब वह उस बेटी का मन ही मन में तिरस्कार करती है। ऐसे अवसर पर इस घर के प्रमुख पात्र दशरथ पड़ोसवाले उपरसेन के घर में उनके तीन पोते कैसी गलत हरकतें करके उन्हें परेशान कर रहे हैं वह बताकर अपने पत्नी के मन में पोतीयों के प्रति संवेदना को जागृत करने में सफल होते हैं यह दिखाया है। धीरे-धीरे भगवती की सोच में परिवर्तन होने लगता है। अपने घर के पोतों के गलत व्यवहार देखकर शर्म महसूस करनेवाली दुर्गा जब पड़ोसन भगवती की पोतियों की सफलता और सम्य व्यवहार को देखती थी तब सोचने लगी कि लड़कीयों के प्रति अपनी सोच कितनी गलत थी इसका एहसास उसे होने लगता है और वह भगवती के भाग्य की प्रशंसा करती है। तब अनायास भगवती की सोच में भी परिवर्तन होने लगता है। कन्याओं के प्रति सकारात्मक सोच और आत्मिक सहजता को जगाना य उपन्यास का उद्देश्य सफल होता हुआ दिखाई देता है।

स्त्रियों की मानसिकता में परिवर्तन

दरअसल आधुनिक काल में स्त्रियों में जो परिवर्तन दिखाई देता है वह बाहरी मोर्चे पर आया परिवर्तन है। आंतरिक परिवर्तन विचारों के जरिए आहिस्ता आहिस्ता मगर स्थायी रूप में होता है। इसके लिए लगातार मानसिक जागृति और वैचारिक सांस्कृतिक उद्बोधन की आवश्यकता है। सिर्फ संविधान और कानून में परिवर्तन करने से हालात में परिवर्तन नहीं हो सकता। बाहरी परिवर्तन स्त्रियों को आधुनिक दिखा सकता है मगर इससे दिमागी जड़ता और अंधविश्वास दूर नहीं हो सकता। 'शकुंतिका' उपन्यास में ऐसे चरित्रों का निर्माण किया है जो अपनी सोच के माध्यम से परंपरागत विचारों को छेद देने का प्रयास करते हैं। नये युग की लड़कियों के ऊपर अपने परंपरागत रुढ़ी तथा अंधश्रद्धा का प्रभाव सहज दिखाई देता है। इसे जड़ से उखाड़ने के लिए इस उपन्यास के पुरुष पात्र दशरथ अपनी पोती गार्गी जो मेडिकल की पात्रता परीक्षा की सफलता के लिए ईश्वर की आराधना करती है तब वह उसे अपने ऊपर भरोसा करने की सीख देते हैं। अंधश्रद्धा का विरोध करते हुए अपने भीतर अपने कर्मों से आत्मविश्वास जगाने के लिए कहते हैं। अपने हक की लड़ाई लड़ते हुए ऐसे दक्षिणानुसी विचारों से दूर होकर नये विचार अपनाने होंगे यह सीख देते हैं। अक्सर अनाथालय से लड़का गोद लेने की प्रवृत्ति को लेखक ने खंडित करते हुए पोतों की गलत हस्तियों से परेशान दुर्गा के माध्यम से भगवती की सोच में परिवर्तन करने का सफल प्रयास करते हुए भगवती का लड़का ओर बहु लड़की को गोद लेने का फैसला कर सकने में कामयाब होते हैं। आधुनिक काल में लड़कों का ध्यान अधिकतर माता-पिता की जायदाद पर अधिक रहता है। उनके भीतर स्नेह, संवेदना, आत्मीयता, जिम्मेदारी का एहसास कहीं दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत लड़कियों के लिए प्रेम ही सबसे बड़ी संपत्ति होती है। इसलिए लेखक यह दर्शाते हैं कि, जहाँ आज तक लड़के की खुशी के लिए कुआँ पूजन की विधियों की जाती है यहाँ भगवती के घर गोद में ली हुई पिहू के घर आने की खुशी में कुआँ पूजन की विधि करके परंपरा को खंडित करने का भाव दर्शाया है। इस लड़की के बारे में दुर्गा अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहती हैं, 'पता नहीं फूल सी नहीं जान को ऐसे कहीं भी फेंकते हुए लोगों का जरा भी दिल नहीं पसीजता है, वह कैसी माँ होगी जो अपने जिए के टुकड़े को फेंककर चली गयी।' स्त्री ने लड़की को फेंकना यह स्त्री ने स्त्री की वंचना करना है। माँ की ममता की यह प्रतारणा है, वास्तव्य की यह उपेक्षा है। उसे हम जैसी स्त्रियाँ अगर अपना रही हैं तो हमें आधुनिक कहना गलत होगा क्योंकि आधुनिक उसे कहा जाता है जिसकी सोच में परिवर्तन होता है। परंपरागत रुढ़ी, मान्यताएँ अगर गलत हैं तो उसमें परिवर्तन लाने का साहस करना होगा यह कहते हुए दशरथ कहते हैं कि, 'बात रीत की नहीं, बात आदमी की खुशी की है। वैसे यह रीत—रिवाज कोई आसमान से उतरकर आए नहीं हैं। इंसान ने अपने खुशी के लिए बनाए हैं।' उद्देश्य वाक्य में यथार्थ सोच व्यक्त होती है। वैसे परंपराओं की जड़े मजबूत होती हैं, उन्हें उखाड़कर फेंक देना आसान नहीं होता। लेकिन मन की चाहत और समाज का संगठन इसे दूर करके नई सभ्यता का विकास कर सकते हैं यह विश्वास दिलाया है।

स्त्री अस्मिता की पहचान

स्त्री अस्मिता की पहचान उसकी आत्मनिर्भरता पर निर्भर होती है। इस उपन्यास में आधुनिक काल की लड़कियाँ अपने ज्ञान के माध्यम से अपना अस्तित्व निर्माण करने में कामयाब होती हैं। घर की लड़कियाँ सरकारी स्कूल में जाकर सिया का वकील बनना, गार्गी का डॉक्टर बनना, पिहू का परदेश जाना यह उनकी अपनी गुणवत्ता का परिणाम हैं। यह स्त्री की अस्मिता की पहचान है। जब स्त्री आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप में सबल हो जाती है तब वह अपने जीवन के निर्णय लेने में सफल हो जाती है। परंपरा से स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर रहती

थी और उन्हें हर बात उनकी माननी पड़ती थी। इस उपन्यास में भगवती की पोटियों उच्चशिक्षा विभूषित होने के कारण वह अपना जीवन साथी चुनने का फैसला लेने में समर्थ दिखाई देती है। अनमेल विवाह यह आज भी एक बड़ी समस्या है। इसके ऊपर उपाय बताते हुए लेखक उग्रसेन के माध्यम से दशरथ को समझाते हुए कहते हैं—'दशरथ तू भी कैसी बच्ची जैसे बातें कर रहा है। अरे, यह सब कहने की बात है। बिरादरीवाले रिश्ते की क्या गारंटी है कि वहाँ सिया खुश और सुखी रहेगी? ये नये जमाने के बच्चे हैं, अगर इसने कोई फैसला लिया है तो कुछ अच्छा बुरा समझ कर लिया होगा।' इस वाक्य से लेखक समाज के मन से धर्मभेद, जातिभेद हटाकर मानवतावादी भाव प्रेरित करना चाहते हैं। दोनों लड़कियों की शादी बिरादरी के बाहर हो जाना यह आधुनिकतावाद सहज अपनाया समाज के लिए प्रेरणादायी है। भाव अपनाया गया है। लेकिन भगवती के परंपरावादी विचार आसानी से छुटते नहीं हैं। वह अपनी तिसरी पोती युल्युल की शादी बिरादरी में करने का फैसला देती है। लेकिन यही बिरादरीवाले लोग दहेज के लालच में जब उसे परेशान करते हैं तब भगवती के परंपरागत विचारों में छेद हो जाता है। सिया अपनी वकीली के अधिकार से जब उन्हें नोटिस भेजती है तब उनका दिमाग ठिकाने आ जाता है। आज इन विचारों की जरूरत महसूस हो रही है। आजकल के लड़के धन के बल पर आधारा बनते जा रहे हैं। उन्हें अपने माँ-पिताजी के प्रति स्नेह नहीं है मगर उनकी जायदाद पर अधिकार की बात जरूर करते हैं। उग्रसेन को दो बच्चे और चार पोते होने के बावजूद बुढ़ापे की अवस्था में अकेलेपन को अपनाने पर मजबूर हो जाते हैं। पड़ोसवाली लड़कियाँ स्नेह से उनकी देखभाल करती हैं। लेखक हमें संकेत देना चाहते हैं कि, हमें लड़का-लड़की यह भेद न करते हुए सबको समान मानकर व्यवहार करना सीखना होगा।

उपन्यास का कमजोर पक्ष

उपन्यास की कथा में संघर्ष कहीं दिखाया नहीं गया है। वैसे बिना संघर्ष का कोई परिवर्तन संभव नहीं है। इस उपन्यास में वर्णित सिया, गार्गी, पिहू इन्हें समाज के साथ हर पल संघर्ष करना पड़ा होगा लेकिन उसका जिक्र कहीं दिखाई नहीं देता। कहानी बीच में आकर सपाट भाव को अपनाती है। लेखक आरंभ में कहानी की रोचकता को बढ़ाते हैं वह मध्य में आकर सपाट हो जाती है। सिया के मन का संघर्ष भौंपू के आवाज को बंद करने तक ही सीमित रह जाता है। उसके बाद उसके जीवन में कहीं कुछ बनता या बिगड़ता दर्शाया नहीं गया। गार्गी की मनोदशा का चित्रण भी कहीं नहीं है। पिहू के जीवन की उथल-पुथल के बारे में भी मौन धारण किया गया है। आज की युवा नरियाँ यह सबकुछ चुपचाप सह नहीं सकती उनके भीतरी संघर्ष को बाहर लाने में लेखक कमजोर पड़ते हुए दिखाई देते हैं। शायद लेखक पुरुष होने के कारण स्त्री की अंतरात्मा में पहुँचने में सफल नहीं हो पाये। जो असल में भोगता है वही उसे महसूस कर सकता है और वही उसे व्यक्त कर सकता है। कहानी की घटनाओं का भाव दर्शाते हुए कहीं भी कोई पात्र आक्रमक नहीं होता यह असली जीवन में संभव नहीं। फिर भी उपन्यास में ऐसे किसी भाव का चित्रण नहीं दिखाई देता। यह लेखक का अपना दृष्टिकोण हो सकता है।

समीक्षा

उपन्यास की कथा मार्मिक तथा कारुणिक स्थितियों को दर्शाता है। समूची कथा भावुकता के तानों बानों से निर्मित है। जिसमें एक प्रवाह है। भावनाओं का यह प्रवाह कथा को आकर्षक बनाता ही है, पाठकों को भी अपने साथ बहाकर ले जाता है। इस्तुतः जहाँ भावावेग की प्रबलता होती है वहाँ कथा का सौंदर्य भी निखर उठता है। 'शकुंतिका' उपन्यास का कथाशिल्प मात्र प्रयोग की दृष्टि से न करके उसके साथ लेखक की गहरी अनुभूतियाँ जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। यही कारण है कि उस सहजता और स्वाभाविकता पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट होती है। समकाली

शहरी हो या ग्रामीण संस्कृति में लड़की के जन्म को आज भी नकारा जा रहा है। यह हमारी मानसिक दुर्बलता द्योतक है। कन्या भ्रुण हत्या सभ्य समाज का वह हथियार है जो इन्हें सबके सामने कलंकित होने से बचाता है। मगर इसके दुष्परिणाम जब दिखाई देने लगे तब इसे कानूनन अपराध घोषित करना पड़ा। फिर भी यह धिनौने कृत्य आज भी जारी है। क्योंकि कानून इस समस्या का समाधान कभी ढूँढ़ नहीं सकता, केवल उसका इलाज जन जागरूकता है और स्त्री के प्रति संवेदनाओं को जगाना है। जिसमें समाज में फैला हुआ अज्ञान तथा अंध-श्रद्धा का अंधेरा हटाया जा सकता है। लेखक संकेत देते हैं कि, चिकनी चुपड़ी बातें करके स्त्री को सम्मान नहीं मिल सकता। उसके लिए स्त्री जो आज स्त्री की दुश्मन बनी है उसमें परिवर्तन लाना बहुत जरूरी है। लेकिन उसके लिए इस उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र दशरथ और उग्रसेन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। स्त्री का सम्मान तभी बढ़ता है जब परिवार के सदस्य हमेशा उनका साथ देते हैं और जरूरत पड़ने पर उन्हें डाटते भी हैं। इस उपन्यास में ऐसी अनेक घटनाएँ दिखाई देती हैं। जिसमें परंपरागत स्त्री भगवती आनेवाली कन्या की भ्रुण हत्या की बात सोचती हैं। लेकिन सही समय पर उन्हें अच्छे विचार मिलने पर विचारों में परिवर्तन आ सकता है। यह उपन्यास की विशेष मौलिकता है। इसी समय पर लड़कियों को परिवार की तरफ से मार्गदर्शन मिलेगा तब वह आसमान को छूने लगती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, उनके भीतर आत्मविश्वास जागेगा और बाहरी संघर्ष को आसानी से वह मात कर सकती हैं। अपनी कसौटी पर खरी उतर सकती हैं। आज लड़कियाँ अपनी गुणवत्ता के आधार पर कुल का नाम रोशन करती हैं। यही महत्वपूर्ण चेतावनी लेखक समाज को देना चाहते हैं। यही इस उपन्यास की श्रेष्ठता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शकुंतिका - भगवानदास मोरवाल - राजकमल प्रकाशन 2020
2. हिंदू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व - डॉ. प्रीति मिश्रा 2009
3. महिला सशक्तिकरण और कानून - डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री 2008
4. भारतीय महिला एवं आधुनिकीकरण - 'आरजू'